हिन्दी काव्य और प्रयोगवाद

—रामकुमार खंडेलवाल
एम. ए.

हिन्दी काव्य और प्रयोगवाद

लेखक—

श्री रामकुमार 'खण्डेलवाल' एम० ए०

(प्राध्यापक—हिन्दी विभाग)

उस्मानिया विश्वविद्यालय

हैदराबाद ।

विनोद पुस्तक मन्दिर

हॉस्पिटल रोड, आगरा ।

कुमारी रानी राजदान (एम.ए. फाइनल) को १९६६-६७ के सत्र में सृजनात्मक साहित्यिक गतिविधियों के लिए पारितोषिक रूप में प्रदान की गई।

[illegible]
सभापति 20.11.67

Donated by
Smt RK Razdan
w/o RL Shaw

फूलकुमारी ओझा
मंत्री 20.11.67

हिन्दी परिषद्
स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, कश्मीर मण्डल,
जम्मू तथा कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर, कश्मीर, भारत

हिन्दी काव्य और प्रयोगवाद

लेखक—

श्री रामकुमार 'खण्डेलवाल' एम० ए०

(प्राध्यापक—हिन्दी विभाग)

उस्मानिया विश्वविद्यालय

हैदराबाद ।

विनोद पुस्तक मन्दिर

हास्पिटल रोड, आगरा

प्रकाशक—
विनोद पुस्तक मन्दिर,
हास्पिटल रोड, आगरा।

प्रथम संस्करण
१९५९
मूल्य २)

मुद्रक—राजकिशोर अग्रवाल, कैलाश प्रिंटिंग प्रेस,
बाग मुजफ्फरखाँ, आगरा।

पूजनीया माताजी को

जिन्हें कभी कुछ न दे सका

हृदय की

सम्पूर्ण श्रद्धा एवं स्नेह सहित

—कुमार


No.
Date
JAMMU

प्रयोग की प्रवृत्ति

साहित्य में कोई भी प्रवृत्ति एक दम नवीन नहीं होती, वरन् युगीन परिस्थितियों के अनुसार जब प्रचलित काव्य-प्रवृत्तियों में ताजगी नहीं रह जाती, तब जीवन और जगत की स्थिति से प्रेरित होकर कवि उसमें ताजगी लाने का प्रयत्न करता है। यह ताजगी वैचारिक नव्यता के रूप में हो सकती है अथवा अभिव्यञ्जना-पद्धति या शैली की नव्यता के रूप में। जब यह नव्यता साधन होती है, तब उसका विकास अधिक उदात्त रूप में होता है, पर जब वही साध्य बन जाती है, तब प्राचीन चित्रकाव्य के चमत्कार का सा महत्त्व ही प्राप्त करती है। यदि कवि के पास कहने को कुछ जीवनानुभव हैं या जीवन के आदर्श रूप की कोई कल्पना है, तो वह समाज के जीवन और संस्कृति को आगे बढ़ाने में सफल होता है और यदि उसमें कोरी शैली-बाजी है, तो वह काव्य जैसी सबल कला के साथ खिलवाड़ करता है।

जिस प्रकार प्राचीन समय में कवि की दुहाई दिये बिना ऊँचे से ऊँचे कवि हो गये हैं, उसी प्रकार बिना प्रयोगवाद की दुहाई दिये हुए सदैव प्रयोग होते रहे हैं। प्रत्येक युग के काव्य में नवीन प्रयोगों के कारण ही नव्यता आती रही है, परन्तु उसका लक्ष्य जीवन और संस्कृति का सौंदर्य चित्रित करना रहा है उसके सत्य का उद्घाटन करना रहा है, प्रयोग-मात्र नहीं। कालिदास से लेकर कबीर, तुलसी, बिहारी, पद्माकर, प्रसाद तक सभी अपने-अपने ढंग से प्रयोग करते रहे हैं। पर, इनमें प्रयोग के अतिरिक्त कुछ और महत्त्वपूर्ण था और उसी के नाम पर उनके काव्य की प्रवृत्ति का नाम रखा गया। आज की कविता में विशेषता उसके विषय या वस्तु तत्त्व में नहीं देखी जाती। कम से कम उसमें कोई एक सर्वनिष्ठ ऐसा गुण नहीं है, जिसके

आधार पर उसका नाम दिया जा सके, अतः प्रयोग की प्रवृत्ति के कारण प्रयोगवाद इसका नाम दे दिया गया। जिन लोगों ने इस नाम से आपत्ति की उन्होंने "नयी कविता" कह कर प्रयोगवादी कविता को अभिहित किया।

इसमें कोई संदेह नहीं कि इस युग की कविता में नीरसता एवं एकस्वरता आ गई थी और यह भी मानना पड़ेगा कि इसी नयी प्रवृत्ति के कारण कुछ नव्यता का सम्पादन भी हुआ है। पर इस प्रवृत्ति की कविता को "प्रयोगवाद" या "नयी कविता" नाम देने से तो आगे के प्रयोग और नवीनता का द्वार ही रुक जाता है। जब ये प्रयोग पुराने पड़ेंगे, फिर नवीन प्रयोग होंगे, तब हम कहाँ तक प्रयोग-वाद को घसीटेंगे, और जब यह कविता पुरानी पड़ेगी तो आगे पचास-सौ वर्ष बाद की नवीन कविता के सामने इस पुरानी का "नयी कविता" नाम कैसा लगेगा ? उस पीढ़ी के इतिहासकारों और आलो-चकों के सामने हम अपनी बुद्धि और प्रतिभा का दिवालियापन ही प्रकट करेंगे ? आदि प्रश्न इन नामकरणों के साथ उठते हैं। परन्तु मजाक-मजाक में ही सही, प्रयोगवाद नाम पड़ ही गया और 'नयी कविता' भी चलने लगी। आज ठहरने और गँदले पानी को थिरा जाने तक प्रतीक्षा करने का धैर्य भला किसको है ? धैर्यवानों पर भी लोग आक्षेप करने लगे कि इस नवीन अंधड़-वर्षा-भू-हरियाली की संभावनाओं पर कुछ कहें। न कहें तो यह समझा जाता है कि पुरातन-वादी हैं, नयी कविता से प्रेम नहीं है।

आज प्रयोगवादी प्रवृत्ति के अन्तर्गत आने वाली कविता के दो सम्प्रदाय हैं—एक अज्ञेय जी का, दूसरा 'नकेन' सम्प्रदाय। अज्ञेय जी का आग्रह कवि की अन्वेषणशीलता पर है और ठीक है। काव्य का प्रतिपाद्य या कवि का साध्य जब तक सत्यान्वेषण नहीं होता, तब तक उसकी कोई महत्त्वपूर्ण देन नहीं हो सकती। इसके साथ शैली का भी अन्वेषण है। उनके विचार से यह शैलीगत प्रयोग साधन है। परन्तु नकेन-पंथी इसे ही साध्य मानता है। अज्ञेय के अनुयायी अपने

वक्तव्यों में काफी कुछ कहने का संकल्प करते हैं, पर उत्कृष्ट कवि-प्रतिभा जहाँ है वहाँ ही उत्कृष्ट काव्य की सृष्टि होती है, केवल संकल्प या वक्तव्य से तो नहीं। यह भी एक सत्य है। नकेनवादी चमत्कार-पूर्ण हास्य की सृष्टि करते हैं। बेमेल, अयुक्त एवं असंगत कथनों की सृष्टि ही उनकी भारी सफलता है। पर वह कविता तो हल्का मनो-रंजन या हास्य-सृष्टि ही कर सकती है। कविता की महान परम्परा में क्षुद्र चमत्कृति बाल-चेष्टा या खिलवाड़ जैसी ही जान पड़ती है। उदाहरणार्थ एक रचना है :—

"ई से ईश्वर
उ से उल्लू—
माँ जी ?
नहीं जी
वह पंछी
"जो देखता है रात भर"

—(नकेन प्रपद्य—पृष्ठ ५०, रचनाकार केसरीकुमार)

यह 'नर्सरी राइम्स' के समान रचना है, जिसमें असंगत प्रलाप है। पर इसमें हास्य की भी तो अच्छे प्रकार सृष्टि नहीं होती। असंगत पद-योजना की प्रवृत्ति भी प्राचीन समय से मिलती है, पर उसमें एक रोचकता है। एक प्राचीन कविता देखिये :—

भादों पक्की पीपरी, झर झर पड़े कपास।
बी मेहतरानी दाल पकाओगी, या नंगा ही सो रहूँ॥

इनके प्रत्येक पद में एक दृश्य है, सभी दृश्यों में पारस्परिक संगति नहीं है, परन्तु असंगत में एक हास्य-संवेदना जाग्रत होती है। नवीनता का उद्देश्य ताजगी या चमत्कार लाना उचित है, अनर्गल बकवास नहीं। वह प्रतिभा नहीं कुछ और ही है, जो ऐसी पंक्तियों को लिख मारती है।

यह प्रवृत्ति होते हुए भी आज की कविता के लिये प्रयोगशीलता की निश्चित और महत्वपूर्ण देन है। प्रयोग की आधुनिक

प्रवृत्ति ने भाषा में नवीन प्राण-संचार किया है। छायावाद और प्रगतिवाद की शब्दावली सीमित और रूढ़ हो गई थी। उसमें एक लीक-बद्धता आ गई थी, उस लीक को तोड़कर नवीन शब्द-रचना का पथ-प्रशस्त करने का श्रेय निश्चित रूप से कुछ प्रयोगवादी सपूतों को प्राप्त है।

इसी प्रवृत्ति की दूसरी उपलब्धि बिम्ब-सृष्टि और दृश्य-योजना में है। वैचारिक एवं भावात्मक नव-चेतना की सूक्ष्म अनुभूति-तरंगों को तथा दृश्य-श्रव्य-घ्राण-स्पर्श-आस्वाद-संवेदनाओं के बारीक संस्पर्शों को विविध अप्रस्तुत विधानों, उपमानों, प्रतीक-कल्पनाओं आदि के माध्यम से प्रकट करने में इस पीढ़ी के अनेक कवियों को खासी सफलता प्राप्त हुई है। उनकी सफलता समस्त रचनाओं में होकर कुछ विशिष्ट रचनाओं में सीमित अवश्य है, परन्तु सबसे अधिक महत्व इस प्रवृत्ति का इस बात में है कि इसने अभिव्यंजना का एक नवीन द्वार खोल दिया। इस दिशा में सावधान रहने की यह बात है कि शब्दावली सीमित, रूढिबद्ध और लीक में ढल कर न रह जाये। अभी अधिकांश रचनाओं में अनुकरण की गंध और अनुवाद की घुटन भी विद्यमान है। शब्दावली में स्वच्छ एवं खुली प्रकृति की सरसता जितनी समाविष्ट हो उतना हो अच्छा है।

विषय एवं वस्तु-तत्त्व की नवीनता एवं सामयिकता भी इस प्रवृत्ति में देखी जाती है। इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि प्रयोग की प्रवृत्ति को लेकर चलने वाली कविता में रोचक विविधता है। आज के कवि के लिये कोई भी विषय कविता के क्षेत्र से बाहर की वस्तु नहीं रह गया। छायावाद की अस्पष्टता और प्रगतिवाद की साम्प्रदायिकता यदि वास्तव में इस कविता से छूट सके, तो इससे बड़ी आशा की जा सकती है।

प्रयोग की प्रवृत्ति का और मनोरम कार्य यह है कि उसने लोकगीत के तत्त्वों एवं लोक-भाषा की शब्दावली को आत्मसात् करने का अच्छा

प्रयत्न किया है। इससे उसमें सचमुच लोकप्रियता आ सकती है, यदि उसका स्वाभाविक उपयोग किया जाये। इससे प्रभावित होकर कुछ गीतकारों ने भी सुन्दर और मोहक गीत लिखे हैं और कुछ ने स्मरणीय कवितायें भी लिखी हैं। वास्तव में आज कुछ ऐसी ही रचनाओं से कविता और उसके भविष्य के अस्तित्व पर आस्था टिकी हुई है। कविता के शब्द-भण्डार को लोक-भाषा एवं विज्ञान से ही सामग्री मिलती है। लोक-भाषा में सौंदर्य भी है और फूहड़पन भी। वैज्ञानिक भाषा में शास्त्रीय दुरूहता भी है और प्रगति भी। काव्य में फूहड़पन को स्थान नहीं। अतः उस फूहड़पन और दुरूहता, दोनों को बचा कर शब्द-चयन और शब्द-निर्माण करना पड़ता है। आज के कवि ने ऐसा करने का प्रयत्न किया है, इसमें सन्देह नहीं। पर यह भी सत्य है कि कुछ फूहड़पन में भी फँस गये हैं, और कुछ फारमूले और नुस्खे बना कर ही रह गये हैं। कविता जीवन की सृष्टि करती है। रूप, चेष्टा, गति और सौन्दर्य उसके अंग हैं। उनका विकास करना और मानव-संस्कृति को आगे बढ़ने की नयी कल्पना देना, समाज के सौंदर्य-संस्कार को और समृद्ध करना है, और नवीन कल्पना को प्रोत्साहित कर जीवन में सरसता का संचार करना, आज के युग की, कविता से माँग है। अतः उसकी समस्त प्रयोगशीलता को इसी की पूर्ति के लिए प्रयत्न करना अभीष्ट है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रयोगवाद का एक सर्वेक्षण है। इसके लेखक श्री रामकुमार खण्डेलवाल मेरे अति प्रिय शिष्य रहे हैं। अतः मुझे उनका यह सामयिक एवं आवश्यक प्रयत्न देख कर बड़ी प्रसन्नता हुई। इसके लेख "तीसरा सप्तक" के प्रकाशन के पूर्व लिखे गये हैं, अतः इसमें संगृहीत कवियों और कविताओं पर लेखक ने विचार नहीं किया है। अद्यतनता एवं सम्पूर्णता की दृष्टि से यह एक कमी है जिसे लेखक आगे पूरा कर देगा; परन्तु इस प्रवृत्ति के अध्ययन में इससे कोई खास कमी उपस्थित नहीं होती, क्योंकि लगभग वही विशेषता "तीसरा

सप्तक" की रचनाओं में भी है जो पूर्वगामी सप्तकों की रचनाओं में थी, और कविता की उत्कृष्टता तो इसमें दूसरे सप्तक से कम ही है। हाँ, वक्तव्य कवियों के जरूर बड़े रोचक हैं। प्रयोगवाद पर व्यवस्थित रूप से कुछ लिखने का यह पहला प्रयत्न है और आशा है कि हिन्दी-संसार इसे रुचि से ग्रहण करेगा।

लखनऊ
विजयादशमी २०१६ वि० } भगीरथ मिश्र

भूमिका

हिन्दी साहित्य में आनेवाली अन्य धाराओं की भाँति प्रयोगवादी धारा का भी भाग्य ऐसा ही रहा है कि एक ओर तो कवियों एवं आलोचकों ने उसकी जी भर कर भर्त्सना की है और दूसरी ओर स्वयं प्रयोगवादी कवियों एवं आलोचकों ने उसे सातवें आसमान पर चढ़ाने का बेढब प्रयत्न किया है। कुछेक ही विद्वानों ने, अपने फुटकर निबन्धों में, पूर्वाग्रहों से मुक्त हो प्रयोग की समस्याओं और उसके रूप पर सहानुभूतिपूर्वक विचार कर निष्पक्ष मत दिया है। प्रस्तुत लेखक को उक्त दृष्टिकोण से लिखी हुई एक पुस्तक की आवश्यकता अनुभव हुई।

"तार सप्तक' (१९४३) तथा 'दूसरा सप्तक' (१९५१) के कवियों को प्रयोगवाद के प्रतिनिधि कवि मानने में किसी को आपत्ति न होनी चाहिये। (यद्यपि अब तो 'नकेन वादी' अपने को सच्चा प्रयोगवादी मानते हैं और सप्तकों के कवियों को केवल प्रयोगशील कह अपने भिन्न अस्तित्व की घोषणा करते हैं) अतः प्रस्तुत लेखक ने अन्य प्रयोगवादी रचनाओं के साथ, विशेषरूप से दोनों सप्तकों में प्रकाशित कविताओं तथा कवियों के स्वयं के दिये हुए वक्तव्यों को, एक विद्यार्थी की जिज्ञासा से ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है। जो उस पर प्रभाव पड़ा उसे ईमानदारी से व्यक्त करने का प्रयत्न किया है। इस पुस्तक में प्रयोग—एक परिचय के पश्चात् 'तार सप्तक' एवं 'दूसरा सप्तक' शीर्षक में वही अध्ययन प्रस्तुत किया गया है जिसे एक सामान्य पाठक की व्यक्तिगत प्रतिक्रिया के स्वरूप में ही पाठकगण लें, ऐसी प्रार्थना है। कवियों के वक्तव्य की उल्लेखनीय बातें भी दी गई हैं ताकि स्वयं पाठक कवि के दृष्टिकोण से परिचित हो सकें। तदोपरान्त—

'प्रयोग, परम्परा एवं व्यक्ति
प्रयोग, कला एवं कलाकार
प्रयोग एवं रूप-योजना
प्रयोग एवं अस्पष्टता

तथा अन्त में—

खण्डों में प्रयोगवाद से सम्बन्धित प्रश्न—जो उठे हैं अथवा उठ रहे हैं—उनपर निष्पक्ष रूप से तथा सप्रमाण विचार करने का प्रयत्न किया गया है। लेखक किस सीमा तक निष्पक्ष रह सका है तथा उसके मत कहाँ तक विचारणीय हैं यह निर्णय तो कृपालु पाठक ही कर सकते हैं।

श्रद्धेय डा० वंशीधर जी विद्यामार्तण्ड (भूतपूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, उस्मानिया विश्वविद्यालय) तथा डा० रामनिरंजन जी पाण्डेय (अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, उस्मानिया विश्वविद्यालय) का मैं हृदय से आभारी हूँ जिनका शिष्यवत् स्नेह, प्रेरणा एवं मार्ग दर्शन मेरा सम्बल रहा है। अपने गुरुवृन्द डा० दीनदयालु गुप्त, डा० केसरी नारायण शुक्ल, डा० भगीरथ मिश्र (हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय) को कैसे भुला सकता हूँ क्योंकि जो कुछ सीखा है, वह उन्हीं के चरणों में बैठकर, केवल दोष मेरे अपने हैं।

अनेक विद्वानों की कृतियों से ज्ञात एवं अज्ञात रूप में प्रेरणा, भाव एवं विचार मिले हैं उन सबका मैं अनुगृहीत हूँ।

अपनी अर्धांगिनीं श्रीमती 'दीप्ति' के प्रति—जिन्होंने ने अपनी अस्वस्थता में भी अर्धांगिनी होने के दायित्व का पूर्ण निर्वाह इस पुस्तक के सृजन में किया है—किन शब्दों में आभार प्रकट करूँ…

मित्रवर चन्द्रभान रावत (किशोरीरमण महाविद्यालय, मथुरा) और प्रिय भाई जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल (बलवन्त राजपूत महाविद्यालय, आगरा) को उनकी सहायताओं के लिए असंख्य धन्यवाद देना तो चाहता हूँ किन्तु भय भी लगता है; क्योंकि मेरे इन स्नेही बन्धुओं को धन्यवाद भी नाराज कर देते हैं।

गुरु-पूर्णिमा
सं० २०१६.

'कुमार' खंडेलवाल'

विषय-सूची

प्रयोगवाद : परिचय

"मनुष्य में जड़ और चेतन एक प्रगाढ़ आलिंगन में आबद्ध रहते हैं। उसका बाह्याकार पार्थिव और सीमित संसार का भाग है और अन्तस्तल अपार्थिव और असीम का।" १ "अनुभव का साधन इन्द्रियां ही होने के कारण स्वभावतः वह पार्थिव एवं स्थूल की ओर सरलताँ से आकर्षित हो जाता है + + + + जब यह स्थूलोपासना एक निर्दिष्ट सीमा तक पहुँच जाती है तो मनुष्य का चिरप्रसुप्त चेतन एक साथ एक ठेस खाकर विद्रोह कर उठता है।"२ इस विद्रोह का कारण यह है कि मनुष्य या तो इन भौतिक सुखों से ऊब जाता है अथवा निराश एवं हतोत्साहित हो जाता है और उसका चेतन हृदय सूक्ष्म की ओर अग्रसर हो शान्ति खोजता है। यदि एक ओर ऐसा है तो दूसरी ओर सूक्ष्म भी मनुष्य को अपने में बहुत काल तक नहीं बाँध पाता। वह इन्द्रियों से अभिभूत हो पुनः स्थूल की ओर जाता है। इस प्रकार स्थूल के प्रति सूक्ष्म और सूक्ष्म के प्रति स्थूल के विद्रोह की शृंखला चलती रहती है। योरोप तथा संसार के अन्य देशों के साहित्य में भी इस प्रकार के विद्रोह दृष्टिगत होते हैं। हिन्दी साहित्य में हमें इस प्रकार की शृंखला स्पष्ट मिलती है। आदिकाल में

१. श्रीमती महादेवी वर्मा
२. डा० नगेन्द्र

भारतीय भौतिक सुखों, राज-पाट, मान-मर्यादा एवं कंचन-कामिनी के लिये लड़ते रहे। तब के कवियों एवं चारणों ने वीर रस के साथ जो शृंगार-रस-धारा बहाई है वह भी स्थूल है। भक्ति-काल में भक्ति, प्रेम आदि सूक्ष्म भावों का बोल-बाला हुआ। इसी भक्ति और प्रेम ने ऐन्द्रिकता और भौतिकता के समावेश के कारण विकृत रूप धारण किया और रीति काल की सृष्टि हुई। यह शृंखला द्विवेदी-युग के उपयोगितावादी एवं इतिवृत्तात्मक साहित्य तक चलती रही। भावुकता ने पुनः विद्रोह किया और यह क्रान्ति छायावाद के नाम से प्रख्यात हुई।

छायावाद और साथ में रहस्यवाद भी पल्लवित, पुष्पित और फलित हुआ। कुछ समय तक तो उसने साहित्याकाश को पूर्णतया आच्छादित कर लिया। परन्तु यह अमूर्त सौन्दर्योपासना, वायवी भाव-वस्तु और उसी के अनुरूप कोमल एवं सीमित काव्य-सामग्री तथा शैली-शिल्प अधिक समय न चल सके। कवि काल्पनिक जगत् के दुर्भेद कुहासे में पलायनवाद एवं निष्क्रियतावाद की मादक मदिरा पीकर अपने को और न भुला सका। जीवन की विवश निराशायें, सामाजिक कुण्ठायें और आर्थिक विषमतायें असह्य हो उठीं और कवि, एक बार फिर 'इन्किलाब' का गगनभेदी नारा लगा पार्थिव जगत् में अपने अस्त्र-शस्त्र सँभालता हुआ संघर्ष करने के लिये कटि-बद्ध हो गया। उसने जीवन को उसके नग्न रूप में देखा। जीवन की समस्याओं के यथार्थ कारणों पर मनन कर, वह, उनके कर्ममूलक सुलझावों को ढूँढ निकालने की ओर अग्रसर हुआ। उसने इन समस्याओं का अन्त, मोटे रूप से, साम्यवादी जीवन-दर्शन एवं उसके वर्गवाद में पाया और उसी के अनुरूप रूसी और साम्यवादी देशों के साहित्य से प्रेरणा प्राप्त कर वह साहित्य-सृजन में संलग्न हो गया। यह वर्ग प्रगतिवादी कहलाया।

कुछ ही वर्षों में एक और वर्ग साहित्य में आया। इस वर्ग का ध्यान प्रगतिवादियों की भाँति ही भौतिक जीवन एवं उसकी

समस्याओं पर रहा पर वे इनका सुलझाव केवल साम्यवाद अथवा और किसी राजनैतिक वाद में न पा सके। इस वर्ग ने इस क्षेत्र में अन्वेषण की आवश्यकता समझी। यही नहीं, वरन् उन्होंने अभिव्यक्ति के प्रचलित साधनों को भी अपर्याप्त समझा। काव्य-वस्तु और शैली-शिल्प के क्षेत्र में नवीन प्रयोग करके उन्हें आज के अनेक रूप, अस्थिर, चिर प्रयोगशील जीवन के उपयुक्त बनाने में लग गये।

इस दूसरे वर्ग को 'प्रयोगवादी' वर्ग की संज्ञा दे दी गई है और न चाहने पर भी 'अज्ञेय' जी को इसका नेता मान लिया गया है। 'प्रयोगवाद' शब्द भी अभी तक विवाद का विषय बना हुआ है। तथाकथित प्रयोगवादी कवि शमशेर बहादुर सिंह के अनुसार 'प्रयोग-वाद' शब्द गलत है और स्वयं अज्ञेयजी के शब्दों में—"प्रयोग का कोई वाद नहीं है। हम वादी नहीं रहे, नहीं हैं। न प्रयोग अपने आप में इष्ट या साध्य है। ठीक इसी तरह कविता का भी कोई वाद नहीं है, कविता भी अपने आप में इष्ट या साध्य नहीं है। अतः हमें प्रयोग-वादी कहना उतना ही सार्थक या निरर्थक है, जितना हमें कवितावादी कहना।" अज्ञेयजी 'प्रयोगवाद' और 'प्रयोगवादी' संज्ञाओं को माने या न मानें, पर उन्हीं द्वारा प्रकाशित दोनों सप्तकों—'तार सप्तक' और 'दूसरा सप्तक' के कारण ही यह वाद उठ खड़ा हुआ है।

मेरी सम्मति में 'प्रयोगवाद' शब्द बिल्कुल ठीक है। इन कवियों को 'प्रयोगवादी' के अतिरिक्त कुछ कहा भी नहीं जा सकता, क्योंकि इन कवियों का प्रधान ध्येय काव्य-विषयक प्रयोग तथा अन्वेषण है जैसा कि अज्ञेयजी स्वयं कहते हैं—'दावा केवल यही है कि सातों (यानी तार सप्तक के सात कवि) अन्वेषी हैं। काव्य के प्रति अन्वेषी का दृष्टिकोण उन्हें समानता के सूत्र में बाँधता है + + + बल्कि उनके एकत्र होने का कारण ही यह है कि वे किसी एक स्कूल के नहीं हैं, किसी मंजिल पर पहुँचे हुए नहीं हैं, अभी राही हैं—राही नहीं, राहों के अन्वेषी।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि इन कवियों का ध्यान एकमात्र प्रयोग

और अन्वेषण की ओर है। यद्यपि साहित्य में प्रयोग होना कोई नई चीज नहीं। साहित्य में प्रयोग सदा होते रहे हैं और होते रहेंगे। वास्तव में प्रत्येक प्रवृत्ति, प्रवृत्ति होने के पूर्व 'प्रयोग' ही रहती है। प्रयोग सफल होने के कारण ही वह, प्रवृत्ति कहलाने लगती है। पर हाँ, प्रयोग को इस प्रकार की खुली छूट देना इनकी विशेषता है और इसलिये 'प्रयोगवादी' कहना उचित ही है।

प्रयोगवाद की कुछ निश्चित रूपरेखा हो सकेगी, इसमें सन्देह है; क्योंकि अभी कुछ प्रयोग ही हुए हैं और न जाने कितने भविष्य के अन्धकार में छिपे हैं। हाँ, अब तक की प्रयोगवादी रचनाओं के आधार पर कुछ कहा जा सकता है। डा० रघुवंश ने इनकी दो सामान्य प्रवृत्तियाँ मानी हैं :—

(१) भावजगत् के काल्पनिक कुहासे से वास्तविकता की ओर बढ़ने का प्रयास

(२) अतिवैयक्तिकता—शैली और सौंदर्य-बोध के क्षेत्र में। जहाँ तक इस प्रथम विशेषता—काल्पनिक कुहासे से वास्तविकता की ओर बढ़ने का प्रयास है—हम पहले ही कह आये हैं कि प्रयोगवाद और प्रगतिवाद छायावाद के सूक्ष्म के प्रति भौतिकता के विद्रोह का परिणाम है। इस विशेषता को मानने में कदाचित् ही कोई मत-भेद हो।

इस अतिवैयक्तिकता का भी होना स्वाभाविक ही है। कारण 'प्रयोगवाद' नाम—जिसे हम सर्वदा उचित मानते हैं—से ही स्पष्ट है कि यह कवियों के प्रयोगों का फल है। प्रयोग वैयक्तिक ही होते हैं, कवि को अपनी अनुभूति अपनी होती ही है और उसकी अभिव्यक्ति भी अपनी, विशेषतया जब वह उन दोनों ही क्षेत्रों में अपने प्रयोग करने में स्वतन्त्रता का दावा करता है। और मेरी समझ में यही प्रयोगवाद और प्रगतिवाद की धूमिल विभाजक रेखा है। प्रगतिवादी, प्रगति और यथार्थता का दावा करते हुए भी एक विशेष साम्यवादी दृष्टिकोण से ही वस्तुओं को देखने का अभ्यासी बन जाता है वह

शोषक और शोषित वर्गको हृदय से निकाल ही नहीं सकता । अतः स्वभावतः ही वह तथाकथित शोषित के प्रति अति सहानुभूतिपूर्ण और तथाकथित शोषक के प्रति घोर घृणापूर्ण दृष्टि रखता है। इस प्रकार जीवन के अन्य अंगों को भी वह साम्यवादी विचारधारा और दृष्टिकोण से देखता है । पर प्रयोगवादी इससे दूर है। उसके लिए उसका अपना दृष्टिकोण ही सब कुछ है। जीवन की अनुभूतियाँ जो उसे जिस रूप में प्राप्त होती हैं और फिर उन्हें जिस ढंग से वह व्यक्त कर सकता है, वही उसके लिये कला की उच्चतम पराकाष्ठा है। न वह भावनाओं को छिपाने, सँवारने, सुधारने में विश्वास रखता है और न शैली-भाषा आदि को निखारने में। उसके लिये यह सब भी प्रयोग ही हैं जिस प्रकार जीवन ही चिर प्रयोग। इसी कारण शमशेर बहादुर सिंह जैसे प्रयोगवादी कवियों में भी जो अपने को खुले ढंग से मार्क्सवादी मानते हैं, वैयक्तिकता है और वे इस वैयक्तिकता के प्रति जागरूक भी हैं।

इस अति वैयक्तिकता के कारण प्रयोगवादी रचनाओं में विपुल विरोध एवं अत्यन्त विभिन्नता मिलती है। यह विरोध एवं विभिन्नता केवल विभिन्न कवियों में ही नहीं है, वरन् एक ही कवि की विभिन्न रचनाओं में प्रतीत होती है और कभी-कभी एक ही रचना में भी विरोधाभास के दर्शन होते हैं। आज के इस संकुल युग का आकुल कवि विरोध, अस्थिरता एवं अन्तर्द्वन्द्व से घिरा हुआ है । कवि की अभिव्यक्ति का सम्बन्ध उसकी समवेदना से हुआ करता है और संवेदना, वस्तु, परिस्थिति और वातावरण के साथ बदलती है । वस्तु, परिस्थिति, वातावरण आदि आज के युग में कितनी तीव्रता से बदलते हैं यह हम सभी देखते हैं। प्रयोगवादी कवि इस अस्थिर, विरोध एवं अन्तर्द्वन्द्व से आकुल मनः स्थिति के यथार्थ चित्रण को ही उचित समझता है।

हम ऊपर कह आये हैं कि यह अतिवैयक्तिकता सौन्दर्य-बोध और शैली दोनों ही क्षेत्रों में है। सौन्दर्य को उन्होंने केवल मसृण एवं मधुर

तक ही सीमित नहीं समझा है। सौन्दर्य चेतन को गत्यात्मक एवं व्यापक माना है। चूंकि आज के हमारे जीवन में पुरुष अनगढ़ और भदेस हमारे अधिक निकट हैं अतः वे इनकी ओर अधिक आकृष्ट होते हैं। यद्यपि सौन्दर्य के प्रति यह दृष्टिकोण महादेवी आदि छायावादी कवियों का भी रहा है जैसा कि उनकी इन पंक्तियों से प्रकट है :—

"फूलों के भार से झुक-झुक पड़ने वाली लता कोमल है, पर शून्य नीलिमा की ओर विस्मित बालक सा ताकने वाला ठूँठ भी कम सुकुमार नहीं। गुलाब के रंग और नवनीत की कोमलता में कंकाल छिपाये हुए रूपसी कमनीय है पर झुर्रियों में जीवन का विज्ञान लिखे वृद्ध भी कम आकर्षक नहीं।"

पर इस दृष्टिकोण को वे व्यवहार में न ला सके। प्रयोगवादी कवियों ने 'मेंढक', 'मूत्र-सिंचित मृत्तिका के वृत्त में' खड़े हुए 'धैर्य-धनी गदहे', 'चप्पल', 'अपच' और 'चाय की प्याली' आदि पर भी कलम उठाई है—

तू सुनता रहा मधुर नूपर ध्वनि यद्यपि बजती थी चप्पल

—भारतभूषण

निकटतर धँसती हुई छत, आड़ में निर्वेद
मूत्र–सिंचित मृत्तिका के वृत्त में
तीन टाँगों पर खड़ा नत-ग्रीव
धैर्य-धन गदहा

—अज्ञेय

शैली के क्षेत्र में तो अतिवैयक्तिकता और भी स्पष्ट एवं सप्रयत्न है। प्रयोगवादी कवि भाषा का सर्वथा वैयक्तिक प्रयोग करते हैं। वे शब्द के प्रचलित अर्थों को ग्रहण नहीं करते। वे अपने विशिष्ट अनुभव को व्यक्त करने के लिये विशिष्ट अर्थ में शब्दों का प्रयोग करते हैं। उनके अनुसार साधारणीकरण की पुरानी प्रणालियाँ रूढ़ हो गई हैं। अतएव वे भाषा में 'नया, अधिक व्यापक, अधिक सारगर्भित अर्थ' भरना चाहते हैं। इसके लिए वे विभिन्न विज्ञानों, शास्त्रों, गली-कूँचों,

गाँवों सभी जगह से शब्द एकत्र करते हैं तथा इन शब्दों का विचित्र एवं मनमाना प्रयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त "भाषा को अपर्याप्त पाकर विराम-संकेतों, अंकों और सीधी-तिरछी लकीरों से, छोटे-बड़े टाइप से, सीधे या उलटे अक्षरों से, लोगों और स्थानों के नामों से, अधूरे वाक्यों से—सभी प्रकार के इतर साधनों से कवि उद्योग करने लगा कि अपनी उलझी हुई संवेदना की सृष्टि को पाठकों तक अक्षुण्ण पहुँचा सके।"१

इस प्रकार छन्दों में भी प्रयोगवादी कवि "प्रायः मुक्त छन्द को ही ग्रहण करता है और उनमें वार्णिक और मात्रिक छन्दों की भिन्न-भिन्न संयोजनाओं के अतिरिक्त पदाँश और स्वर-पात आदि की भी व्वथस्था करता है। तुकों का वह अत्यन्त सूक्ष्म प्रयोग करता है, पूर्णान्त तुकों का तो प्रायः प्रयोग ही नहीं करता क्योंकि उसकी धारणा है कि पूर्णान्त तुक छन्द-बन्दों को अतिशय बनाकर विषय की गंभीरता के अनुरूप नहीं रहने देतीं।"२ सारांश कि इस ओर भी वह मनमाने प्रयोग करता है।

इस प्रकार प्रयोगवादी की वैयक्तिकता ही उसकी सबसे बड़ी विशेषता है। दूसरी ओर प्रयोगवादी कवि अपनी रचनाओं के सामाजिक मूल्य की ओर भी जागरूक हैं। वे समझते हैं कि उन पर सामाजिक उत्तरदायित्व है और उसे उन्हें निभाना है। डॉ० रघुवंश की सम्मति में उनकी सफलता और असफलता का रहस्य भी यही है। यदि यह कवि सामाजिक चेतना के प्रति जागरूक होकर अपनी वैयक्तिकता का निर्वाह कर सके, जैसी कि आशा अभी होती है, तो वे सफल होंगे। परन्तु यदि वे किसी प्रकार असामाजिक व्यक्तिवादी हो गये, व्यक्ति और समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व को न निभा सकें, तो उनके ये प्रयोग 'अपनी-अपनी ढपली अपना-अपना राग' से अधिक महत्त्व् न पा सकेंगे।

१. अज्ञेय, 'तार सप्तक' पृ० ७४

२. डा० नगेन्द्र, 'विचार और विवेचन' पृ० १४६

इन दो विशेषताओं के अतिरिक्त और कोई विशेषता खोज सकना अभी सम्भव नहीं प्रतीत होता। अभी इनकी अति विभिन्नता ही विशेषता है। स्वयं अज्ञेय जी ही इस विभिन्नता के विषय में अनेक बार कह चुके हैं। उन्हीं के शब्दों में, "उनमें मतैक्य नहीं है, सभी महत्त्वपूर्ण विषयों में उनकी राय अलग-अलग है—जीवन के विषय में, समाज और धर्म और राजनीति के विषय में, काव्य-वस्तु और शैली के विषय में उनका आपस में मतभेद है। यहाँ तक कि हमारे जगत् के ऐसे सर्वमान्य और स्वयं-सिद्ध मौलिक सत्यों को भी वे स्वीकार नहीं करते, जैसे लोकतन्त्र की आवश्यकता, उद्योगों का समाजीकरण, यांत्रिक युद्ध की उपयोगिता, वनस्पति घी की बुराई अथवा काननबाला और सहगल के गानों की उत्कृष्टता इत्यादि। वे सब दूसरे की रुचियों–कृतियों और आशाओं—विश्वासों पर, एक-दूसरे की जीवन-परिपाटी पर और यहाँ तक कि एक दूसरे के मित्रों और कुत्तों पर भी हँसते हैं।"१

हिन्दी साहित्य में साधारणतया जब भी कोई नई वस्तु आती है तो कुछ आलोचक तो उसे आसमान पर चढ़ाने का प्रयत्न करते हैं और कुछ उसे रसातल ही में पहुँचाना चाहते हैं। रचनात्मक एवं अतियोक्तिरहित उचित आलोचना का प्रायः अभाव ही रहता है। यहाँ एक उदाहरण देने का लोभ मैं संवरण नहीं कर सकता। छायावाद, जिसने एक बार साहित्याकाश को इतना आच्छादित कर दिया उसी के प्रति एक आलोचक एवं साहित्यिक का दृष्टिकोण देखिये—

एक बार सन् १९४९ में मैं मिश्र-बन्धुओं में अन्तिम पं० शुकदेव बिहारी जी मिश्र से मिलने गया। मैं 'गद्यकार महादेवी' पर कुछ लिखना चाहता था, मैंने उनकी सम्मति चाही। उन्होंने अपने स्वाभाविक ढंग से कहा—भय्या, गद्य पर का कही हम तौ उनके पद्यौ नाहीं पढ़ेन हैं।' मेरे ही एक साथी ने कहा—"हाँ मिश्रजी, वह आपके

१. अज्ञेय—'तार सप्तक' पृ० ६

पढ़ै लायकौ नाहीं है।" उन्होंने पुनः कहा—"हाँ भय्या, एक जने कुछ पढ़त रहे। दूसर पूछन, अरे का सरसाम हुइगा है। वै कहन, नाहीं, यह छायावादी कविता है।"

कुछ ऐसा ही प्रयोगवाद पर भी हुआ है। एक ओर तो प्रयोगवादी कवि अपने प्रयोगवाद की प्रशंसा में बहुत कुछ कह जाते हैं और दूसरी पं० नन्ददुलारे वाजपेयी जी आदि विद्वान् उसकी कटुतम आलोचना करते हैं। डा० नगेन्द्र, डा० रघुवंश आदि ने बीच का मार्ग अपनाया है। पं० नन्ददुलारे वाजपेयी जी के प्रयोगवादी साहित्यिक के प्रति विचार देखिये—

"प्रयोगवादी साहित्यिक से साधारणतः उस व्यक्ति का बोध होता है जिसकी रचना में कोई तात्त्विक अनुभूति, कोई स्वाभाविक क्रम-विकास या कोई सुनिश्चित व्यक्तित्व न हो। वास्तविक सृजन और क्रान्तिदर्शिता के बदले सामान्य मनोरंजन और शैली-प्रसाधन ही उसकी विशेषता होती है। अधिकार और उत्तरदायित्व की अपेक्षा अनिश्चय और उद्‌देश्यहीनता की भावना ही वह उत्पन्न करता है। स्रष्टा और सन्देशवाहक न होकर वह प्रणेता और प्रवक्ता-मात्र होता है।

अज्ञेय जी ने दूसरा 'दूसरा सप्तक' की भूमिका में इन आक्षेपों के लिये यह कहा है—"कुछ आक्षेपों को पढ़कर तो बड़ा क्लेश होता है, इसलिए नहीं कि उनमें कुछ तत्त्व है, इसलिए कि उनमें तर्क-परिपाटी की ऐसी अद्‌भुत विकृति दीखती है, जो आलोचक से अपेक्षित नहीं + + + + तर्क, वाजपेयी जी के, पढ़ने में रोचक हैं और उत्तर की अपेक्षा नहीं रखते, वास्तव में वाजपेयी जी ने आक्षेप करने के लिये आक्षेप किये हैं, ऐसा प्रतीत होता है। बाल की खाल निकालते हुए उन्होंने 'तर्क-विकृति का आश्चर्यजनक उदाहरण' प्रस्तुत किया है।

प्रयोगवादी कविताओं की दुरूहता भी एक प्रश्न बन गई है। डा० नगेन्द्र आदि आलोचकों को सबसे अधिक भय इस दुरूहता से है। यह

दुरूहता—गुण हो या दोष, किन्तु प्रयोगवादी काव्य की एक मुख्य विशेषता अवश्य है।

प्रयोगवाद पर अनेक मत हैं और सकते हैं। निस्सन्देह कुछ प्रयोगवादी कवियों में उच्चकोटि की प्रतिभा है। वे उस प्रतिभा का यथेष्ट परिचय दे चुके हैं। साथ ही कुछ कवियों ने बड़ी ऊटपटाँग 'भदेस' एवं विचित्र रचनायें की हैं। वे कहाँ तक साहित्य में आदर पासकेंगी, यह सन्देहात्मक है।

प्रयोगवादी रचनाओं में मुख्य स्थान 'तार सप्तक' तथा 'दूसरा सप्तक' का है।' 'तार सप्तक' में अज्ञेय जी ने निम्नलिखित सात कवियों को स्थान दिया है—मुक्ति-बोध, नेमिचन्द्र, भारतभूषण, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, रामविलास शर्मा और स्वयं अज्ञेय। 'दूसरा सप्तक' में हैं भवानीप्रसाद मिश्र, शकुन्तला माथुर, हरिनारायण व्यास, शमशेर सिंह, नरेशकुमार मेहता, रघुवीर सहाय तथा धर्मवीर भारती। इनके अतिरिक्त भी अनेक कवि प्रयोगवादियों की सूची में रखे जा सकते हैं यथा डा० रांगेय राघव, केदारनाथ, चन्द्रभूषण, त्रिलोचन शास्त्री, केसरीकुमार, नलिन विलोचन, लक्ष्मीकान्त वर्मा आदि।

'अज्ञेय', शमशेर बहादुर सिंह आदि 'प्रयोगवाद' को एक 'वाद' के रूप में मानने का प्रतिवाद करते रहे, तभी बिहार के श्री नलिन विलोचन शर्मा, केसरीकुमार तथा नरेश (जिन्हें अब उनके नामों के प्रथम अक्षरों के कारण 'नकेन-वादी' मान लिया गया है) ने 'प्रयोग दशसूत्री' की घोषणा कर अपने को सही अर्थ में प्रयोगवादी कहलाने का दावा किया है। उनकी दशसूत्री एवं फक्किका इस प्रकार है :—

प्रयोग-दशसूत्री

प्रयोगवाद के घोषणापत्र का का प्रारूप

१ प्रयोगवाद भाव और व्यंजना का स्थापत्य है।
२ प्रयोगवाद सर्वतंत्र-स्वतंत्र है। उसके लिये शास्त्र या दल-

निर्धारित नियम अनुपयुक्त हैं ।

३ वह महान पूर्ववर्तियों की परिपाटियों को निष्प्राण मानता है ।

४ वह दूसरों से भी अधिक, अपना अनुकरण वर्जित समझता है ।

५ उसे मुक्त काव्य नहीं, स्वच्छन्द काव्य की स्थिति अभीष्ट है ।

६ प्रयोगशील प्रयोग को साधन मानता है, प्रयोगवाद को साध्य ।'२

७ प्रयोगवाद की इक वाक्य-पदीय प्रणाली है ।३

८ उसके लिये जीवन और कोष कच्चे माल की खान हैं ।

९ प्रयोगवादी प्रत्येक प्रयुक्त शब्द और छन्द का स्वयं निर्माता है । ४

१० प्रयोगवाद दृष्टिकोण का अनुसन्धान है ।

हस्ताक्षरित :
नलिन विलोचन शर्मा
केसरी कुमार
श्री नरेश

फक्किका—

(१) Verse Lifre Vers Lifre : भाष्य के लिये देखिये, 'दृष्टिकोण' मासिक के द्वितीय अंक का प्रथम निबन्ध ।

(२) तुलना कीजिये चरित्रशील और चारित्र्यवाद, प्रगतिशील और प्रगतिवाद के साथ ।

(३) Verii—Voco—Visual method.

(४) जैसे चित्रकार वर्णयोजना का, मूर्तिकार प्रस्तरखण्ड का ।

श्री नरेश के अनुसर इसमें पहली बार 'प्रयोगवाद' का मौलिक

शील-निरूपण हुआ[१] उसे प्रयोगशीलता से भिन्न करके देखा गया।

"सप्तकों में अज्ञेय ने जिस काव्य का शीलनिरूपण किया, वह प्रयोगशील का है, प्रयोगवाद का नहीं प्रयोगवादी के लिये प्रयोग साध्य है प्रयोगशीलता के लिए साधन[२]

इस प्रकार 'नकेन'-वादियों ने अज्ञेय जी आदि से कुछ भिन्न मार्ग अपनाया है तथा अपने मार्ग का स्पष्ट निरूपण किया है।

---

१. 'प्रकाश' पटना, २८-१०-१९५१

२. 'पाटल' पटना, अप्रैल ५३ पृ० १०

तार सप्तक

श्री अज्ञेय जी के सम्पादन में "तार सप्तक" सन् १९४३ ई० में प्रकाशित हुआ। इसकी प्रकाशन-योजना के दो मूल सिद्धान्त थे। प्रथम "सहयोग अर्थात् उसमें भाग लेने वाला प्रत्येक कवि पुस्तक का साझी होगा" और दूसरा यह कि "संग्रहीत कवि सभी ऐसे होंगे जो कविता को प्रयोग का विषय मानते हैं—जो यह दावा नहीं करते कि काव्य का सत्य उन्होंने पा लिया है, केवल अन्वेषी ही अपने को मानते हैं।"[१] परन्तु फिर भी अज्ञेय जी ने स्पष्ट कर दिया है "तार सप्तक किसी गुट्ट का प्रकाशन नहीं है क्योंकि संग्रहीत सात कवियों के साढ़े-सात अलग अलग गुट्ट हैं उनके साढ़े-सात व्यक्तित्व"[२] 'तार सप्तक' में निम्न सात कवियों को लिया गया है:—

सर्व श्री गजानन माधव मुक्तिबोध नेमिचन्द्र, भारत भूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, रामविलास शर्मा तथा 'अज्ञेय'।

दूसरा सप्तक सन् १९५१ ई० में प्रकाशित हुआ। इसके भी संक-

---

१ अज्ञेय: 'तार सप्तक', पृ० ५

२ वही पृ० ६

लनकर्त्ता और सम्पादक हैं श्री अज्ञेय जी। 'दूसरा सप्तक' में निम्न सात कवि हैं:—

सर्व श्री भवानीप्रसाद मिश्र, शकुन्तला माथुर, हरिनारायण व्यास, शमशेर बहादुरसिंह, नरेशकुमार मेहता, रघुवीर सहाय, और धर्मवीर भारती।

दोनों सप्तकों के कवियों ने अपने जीवन, अपने तथा अपनी रचनाओं के सम्बन्ध में एक वक्तव्य भी दिया है या कदाचित् 'सप्तकों' की बनावट का एक आवश्यक अंग होने के कारण ऐसे वक्तव्य उन्हें देने पड़े हैं। कुछ भी हो, ये वक्तव्य रोचक हैं तथा कवि की रचनाओं से सम्बन्धित अन्य बातों एवं काव्य के प्रति कवि के दृष्टिकोण पर प्रकाश डालते हैं। ये वक्तव्य एक प्रकार से आवश्यक भी थे, क्योंकि प्रयोगवाद के अन्तर्गत जो प्रयोग हमारे सामने रखे गये हैं उन्हें समझ पाने के लिये यदि सहारा मिल जाए तो उसका स्वागत ही होगा।

यहाँ हर कवि के वक्तव्य के उल्लेखनीय अंश देकर, उनकी कविताओं की समीक्षा एवं कवि के विषय में लेखक का मत दिया गया है।

गजानन माधव मुक्तिबोध

कवि का वक्तव्य :

'तार सप्तक' के प्रथम कवि हैं श्री गजानन मुक्तिबोध। जीवन में 'निम्न-मध्यवर्गीय निष्क्रिय मास्टरी' पल्ले पड़ी है।' कवि के अनुसार "मेरे बाल-मन की पहली भूख सौंदर्य और दूसरी विश्व-मानव का सुख-दुःख—इन दोनों का संघर्ष मेरे साहित्यिक जीवन की पहली उलझन थी।···दार्शनिक प्रवृत्ति—जीवन और जगत् के द्वन्द्व—जीवन के आन्तरिक द्वन्द्व—इन सब को सुलझाने की, और एक अनुभव-सिद्ध व्यवस्थित तत्त्वप्रणाली अथवा जीवन-दर्शन आत्मसात् कर लेने की दुर्दम्य प्यास मन में हमेशा रहा करती।"

मार्क्सवाद की ओर झुकाव होने पर अधिक वैज्ञानिक, अधिक

मूर्त और तेजस्वी दृष्टिकोण कवि को प्राप्त हुआ। शुजालपुर में कवि ने पहले-पहल "कथा-तत्व के सम्बन्ध में आत्मविश्वास पाया। दूसरे अपने काव्य की अस्पष्टता पर दृष्टि गई, तीसरे नये विकास-पथ की तलाश हुई।" कवि ने स्वयं स्वीकार किया है, "मेरी हर विकास स्थिति में मुझे घोर असन्तोष रहा है। मानसिक द्वन्द्व मेरे व्यक्तित्व में बद्धमूल है। यह मैं निकटता से अनुभव करता आ रहा हूँ कि जिस क्षेत्र में भी मैं हूँ वह स्वयं अपूर्ण है,और उसका ठीक-ठीक प्रकटीकरण भी नहीं हो रहा है। फलतः गुप्त अशान्ति मेरे मन के अन्दर घर किए रहती है।"

लेखक के विषय में कवि कहते हैं, "मैं कलाकर की 'स्थानान्तर प्रवृत्ति' पर बहुत जोर देता हूँ।......कला का केन्द्र व्यक्ति है, पर उसी केन्द्र को अब दिशाव्यापी करने की आवश्यकता है। जीवन के इस वैविध्यमय विकास-स्रोत को देखने के लिए भिन्न-भिन्न काव्य-रूपों को यहाँ तक कि नाट्य-तत्त्व को कविता में स्थान देने की आवश्यकता है। मैं चाहता हूँ इसी दिशा में मेरे प्रयोग हों।"

और अन्त में "मेरी ये कवितायें अपना पथ ढूँढ़ने वाले बेचैन मन की अभिव्यक्ति हैं। उनका सत्य और मूल्य उसी जीवन-स्थिति में छिपा है।"

कवितायें:—

'आत्मा के मित्र मेरे' में कवि से उस आत्मा के मित्र का गहरा परिचय है जो:—

......आत्मवत् हो जाय,
ऐसी जिस मनस्वी की मनीषा,
वह हमारा मित्र है
माता-पिता-पत्नी सुहृद पीछे रहे है छूट
उन सबके अकेले अग्र में जो चल रहा है
ज्वलत् तारक-सा

वही तो आत्मा का मित्र है।
मेरे हृदय का चित्र है।

कविता काफी लम्बी और गम्भीर है।

'दूर तारा' दार्शनिकता की छाया लिए है जिसका सहारा लेकर कवि 'प्रत्येक मनु के पुत्र पर' विश्वास करना चाहता है।

'खोल आँखें' में कवि चाहता है कि—

आत्मा मेरी
उस ज्वलन की भूमि में तू स्वयं बिछले
देख, जलते स्पन्दनों में क्या उलझता ही गया है।

'अशक्त' में कवि गा उठा है:—

क्या हमारे भाव शब्दातीत हैं ?
या तुम्हारा रूप भावातीत है ?

इसी कविता की कुछ पंक्तियाँ हैं:—

अर्थ-खोजी प्राण ये उद्दाम हैं,
अर्थ क्या ? यह प्रश्न जीवन का अमर।
क्या तृषा मेरी बुझेगी इस तरह ?
अर्थ क्या ? ललकार मेरी है प्रखर।

किन्तु जब ज्ञान से जीवन में 'मधुर सम्पन्नता', 'ताजगी' तथा विश्वास' न आये तो प्राण विद्रोह क्यों न करें ?

कविता में रहस्यवाद की हलकी सी छाया के साथ कवि-मन की उस घुटन और अतृप्ति का सुन्दर चित्रण है जो विद्रोह करना चाहती हैं, किन्तु फिर अपनी शक्तिहीनता को देखकर असमर्थ सी रह जाती है।

'मेरे अन्तर' में उस जन का अभिनन्दन है जिसके 'उच्च भाल पर विश्व-भार और अन्तर में निःसीम प्यार हो।

'मृत्यु और कवि में' कवि का जीवन-दर्शन मुखर है:—

"अन्तर्दीपक के प्रकाश में विनत-प्रणत आत्मस्थ रहो तुम,
जीवन के इस गहन अतल के लिए मृत्यु का अर्थ कहो तुम।'

'नूतन अहं' आज के अहंग्रसित मानव पर चोट है जिसका 'अन्तर्मन गटरों से भी अधिक अस्वच्छ' है।

'पूँजीवादी समाज के प्रति' में कवि का आक्रोश 'तेरा ध्वंस केवल एक तेरा अर्थ' में व्यक्त हो उठा है।

'नाश देवता' नाश-देवता का अभिनन्दन है, कारण नाश ही तो 'नूतन सर्जन' का प्रणेता है।

'सृजन-क्षण' सृजन-क्षणों का परिचय है। 'अन्तर्दर्शन' में कवि फिर अपने से उलझा है।

'आत्म-सम्वाद' तथा 'व्यक्तित्व और खण्डहर' के साथ कवि ने छोटी छोटी भूमिकायें भी दी हैं जो कविता को समझने में सहयाता देती हैं। किन्तु सप्रयास लिखी गई इन कविताओं में बोझ अधिक है, शक्ति कम।

'मैं उनका ही होता' तथा 'हे महान्' सरल तथा सुन्दर रचनायें हैं। उस महान् शक्ति के सन्मुख नत हो कवि ने 'जीवन के ऊँचा उठ जाने' की आकांक्षा प्रकट की है।

गजानन मुक्तिबोध विचारक अधिक हैं, कवि कम। इनकी रचनायें जीवन और जगत् की उलझनों और स्वयं कवि-हृदय की कुंठाओं से बोझिल हैं। कवि का चिन्तन पक्ष सबल अवश्य है किंतु काव्य-पक्ष के साथ उसका सन्तुलन नहीं हो पाया। 'मैं उनका ही होता', 'हे महान्' तथा 'अशक्त' आदि कुछ रचनाओं को छोड़कर शेष सभी बोझिल रचनायें हैं। ये रचनायें हमारे मस्तिष्क को चुनौती देती हैं किन्तु हृदय को नहीं छू पातीं। भाषा भी भाव के अनुकूल ही गम्भीर है और कवि के दार्शनिक विवेचनों का पूरा साथ देती है।

कवि की घुटन, तड़प नहीं बन पाई है। कवि की दार्शनिकता का उसकी कला पर आवश्यकता से अधिक प्रभाव है। कवि घोर

बुद्धिवादी और व्यक्तिवादी प्रतीत होता है और इन दोनों की उपस्थित ने जैसे उसकी कविता को ढाँक लिया है ।

नेमिचन्द्र

कवि का वक्तव्य—

श्री नेमिचन्द जी 'तार सप्तक' के दूसरे कवि हैं । मार्क्सवादी और कम्यूनिस्ट तथा संगीत के प्रेमी भी ।

आपके अनुसार संस्कार और विवेक की कसमकश ही आपकी अधिकांश कविताओं का विषय है । कुछ में सौंदर्यानुभूति की अभिव्यक्ति है ।

कवि का विश्वास है कि सौंदर्य का आकर्षण सर्वदा पलायन की प्रवृत्ति का ही सूचक नहीं होता वरन् वह तो "जीवन्तता का, जीवन की स्वीकृति का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण चिह्न है + + पलायनशील साहित्य वही होगा जिसमें साहित्यकार एक प्रकार के सौंदर्याभास के कल्पना-जाल में अपने दायित्व से भागता है, जो सौंदर्य के प्रति सचमुच आकृष्ट नहीं है बल्कि जो सौंदर्य को अपनी दायित्वहीनता की एक आड़ बनाना चाहता है ।

आप कहते हैं, "साहित्य की प्रगतिशीलता में मेरा विश्वास है किन्तु कला की सच्ची प्रगतिशीलता कलाकार के व्यक्तित्त्व की सामाजिकता में है व्यक्तित्त्व-हीनता में नहीं + + + कवि से प्रगतिशील होने की माँग का अर्थ है कि वह जीवन के और अपने दृष्टिकोण को बदले । अपने ही सामाजिक दायित्व और स्थान को नहीं बल्कि अपने काव्य के भी सामाजिक महत्त्व को समझे ।"

कवि पर भी एक नागरिक और सामाजिक दायित्व है किन्तु श्रम-विभाजन के कारण वह आत्मकेन्द्री तथा अहंकारी बनता जा रहा है; फलतः "आज के हिन्दी के अधिकांश काव्य में या तो उच्छ्वास है या Patterns ।"

"दूसरे शब्दों में या तो व्यक्ति को अपने से अवकाश नहीं या

वह बुद्धि के जाल में इतना उलझा है कि भीतर मन को देखने की क्षमता नहीं।"

वास्तव में "बिना सचेष्ट नागरिक, वास्तवदर्शी हुए कवि अधिक काल तक कवि नहीं रह सकता। राजनैतिक-सामाजिक शक्तियाँ वह चाहे या न चाहे उसे आकर वहा ले जायँगी। किन्तु यदि वह विवेक-पूर्वक वास्तव का सामना करता है तो वह अपने काव्य को न केवल सच्चा बना सकेगा बल्कि उसे मानवता की मुक्ति के लिये एक बड़ा भारी अस्त्र बना सकेगा; क्योंकि स्वभाव से ही कला मानव-मुक्ति का आलोक है। + + + जिस दिन कवि सचेष्ट भाव से अपनी चेतना को पूर्णरूप से सामाजिक बना सकेगा उस दिन कविता फिर अपने प्राकृत रूप में निखर उठेगी।"

कवितायें—

'कवि गाता है' में हलका व्यंग है कवि के प्रति, जो कलाकार द्रष्टा तथा ज्ञाता होने पर भी अपने पथ से हटकर कुछ और ही गाता है।

'डूबती सन्ध्या' साँझ की सौन्दर्यानुभूति से सिक्त साधारण तथा सुन्दर कविता है।

'अनजाने चुपचाप' और 'इस क्षण में' अधिक सुन्दर हैं। 'प्रेयसि के सुधि परस' से सिक्त इन कविताओं में एक सहज मोहकता है जो कहीं कहीं सुन्दर शब्दचयन का सहारा लेकर अधिक आकर्षक हो उठी हैं। 'अनजाने चुपचाप' की कुछ पंक्तियाँ हैं:—

जीवन के इस कानन में भी फूली है सरसों,
इस वन का भी कोना-कोना
है भर उठा अकथ छलकन से,
प्राणों के कन-कन से
झरता मौलसिरी के फूलों सा
अम्लान स्नेह।

यहाँ 'छलकन' और 'कन-कन' का प्रयोग जैसे अनुभूति को मुखर

कर उठा है। इन रचनाओं में विशेषता कुछ भी न हो, पर वे मन को भाती अवश्य हैं।

'धूल भरी दोपहरी' 'आगे गहन अँधेरा है' तथा 'क्या भाया' छोटी-छोटी तथा साधारणतया अच्छी रचनायें हैं जिनका परिचय उनके शीर्षक हैं। कवि-उर की आकुलता तथा उलझन के दर्शन हमें इन कविताओं में होते हैं।

'जिन्दगी की राह' अधिक लम्बी कविता है। जीवन की कठिन पथरीली राह में भटकते पन्थी को कवि का सन्देश है :—

सब भटकना छोड़ पन्थी
आज आओ साधना की राह
जीवन एक ऐसी राह !

किन्तु इस कविता में पीड़ा के स्वर जितने व्याकुल हैं, सन्देश के स्वर उतने सशक्त नहीं।

'व्यर्थ' नेमिचन्द्र की प्रस्तुत रचनाओं में सबसे अधिक सार्थक रचना है। सार्थक इस अर्थ में कि कवि ने अपनी कुछ तीखी बेचैनी और उसकी प्रतिक्रिया को कलम की नोक से जैसे का तैसा उतार दिया है। कविता प्रभावशाली नहीं है और न कोई गहरा असर ही डालती है किन्तु उलझनों का चित्रण उलझा हुआ न हो, प्रयोगवादी कवि के लिये यह कम श्रेय की बात नहीं है।

कवि हारा नहीं है :—

फड़कती हैं अभी बाँहें
कि अपने मार्ग के अवरोध सारे तोड़ दूँ

किन्तु फिर—

विवश मैं हार जाता हूँ भयंकर मौन से
बेभाव अपने प्राण में छाये हुए एकान्त से

और यही कशमकश अधिकांक प्रयोगवादी रचनाओं की विषय वस्तु होती है किन्तु अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों ही पक्षों में प्राय:

इतनी दुरुह कि उस तक पहुँच पाना एक सिरदर्द बन जाता है। नेमिचन्द्रजी इस 'सिरदर्द' से मुक्त हैं।

'उन्मुक्त' में उस उन्मुक्तता के स्वर हैं जिसके—
बन्धन की ममता समस्त अब टूट चुकी; उसका पथ फैला है प्रशस्त !'

'ममता के बन्धन', की कुछ पंक्तियाँ बड़ी सारगर्भित हैं :—

'अपने मन का पहचान गया है वह स्वरूप
लगता है कितना ओछा अपना क्षुद्र प्यार
कितना दुर्बल बौना है अपना अहंकार

नेमिचन्द्रजी की सबसे बड़ी विशेषता है कि वे कहीं भी उलझे हुए अस्पष्ट या दुरूह नहीं हैं। उनकी उलझनें हमें अपना परिचय देती हैं, निकट खींचती हैं, उलझाती नहीं।

कवि ने अपने वक्तव्य में ठीक ही कहा है कि उनकी कविताओं में से 'अधिकांश की मानसिक पृष्ठभूमि में संक्रान्ति के रंगों की ही प्रधानता है और कुछ में जैसे 'डूबती सन्ध्या' आदि में केवल सौन्दर्यानुभूति की ही अभिव्यक्ति है।'

कवि के पास कवि का हृदय भी है और कवि की लेखनी भी, फिर भी इनकी रचनायें अधिक ऊपर नहीं उठ पाईं; इसका कारण कदाचित् गहराई का अभाव है जो इन रचनाओं को जीवनदान दे सकती। उदासी के अनमने स्वरों के अतिरिक्त शेष स्वर क्षीण ही हैं। हाँ, अपने वक्तव्य में कवि ने जो कुछ कहा है वह अवश्य अधिक सुलझा हुआ, स्पष्ट और तथ्यपूर्ण है।

कवि के सामाजिक दायित्व के प्रति नेमिचन्द्रजी के विचार स्तुत्य हैं कविता की प्रेरक एवं सर्जक शक्ति में नेमिचन्द्रजी का विश्वास प्रशंसनीय है। वक्तव्य का रचनाओं से पूरा सामंजस्य नहीं है, फिर भी निकटता काफी है और विरोध तो कम से कम नहीं है।

भारतभूषण अग्रवाल

कवि का वक्तव्य—

मार्क्सवाद को आज के समाज के लिये रामबाण मानते हैं। कम्यूनिस्ट हैं।

"आज की सामाजिक व्यवस्था और उसकी आधारगत आर्थिक व्यवस्था एक मध्य वर्ग के नवयुवक को अप्राकृतिक रूप से महत्वाकांक्षी और स्वप्नाभिलाषी बना देती है। क्योंकि एक ओर तो वह अपने स्कूल और कालेज में पढ़ाई जाने वाली पाठ्य पुस्तकों से अपने आप को महान् व्यक्ति (Indivdual) बनाने की सोचता है, और दूसरी ओर ऊपर के वर्ग की ऐश्वर्य शालीनता उसे सहज ही आर्कषित करती है। और जो अतिभावुक होता है वह अभिलाषाओं का शिकार होकर सौन्दर्य का भूखा, कल्पना के लड्डू खाने वाला रंगीन कवि हुए बिना नहीं रह सकता।"

"संसार को सच्चा मानकर उसमें कर्म करना क्योंकि वास्तविक क्षमता और सामर्थ्य की अपेक्षा रखता है, इसलिये मैंने कवितायें लिखकर मानो स्वप्न में अपनी अभिलाषायें पूरी कीं और संसार को मिथ्या सिद्ध किया। कर्म से पलायन ही मेरी कविता का स्पन्दन रहा।"

"यदि कविता का उद्देश्य व्यक्ति की इकाई और समाज की व्यवस्था के बीच के सम्बन्ध को स्वर देना और उसको शुभ बनाने में सहायता करना है तो हिन्दी के कवि को समाज से नाराज होकर भागने के बजाय समाज की उस शोषक सत्ता से लड़ना होगा जिसने उसे कोरा स्वप्नभिलाषी और कल्पना-विलासी बना छोड़ा है और जिसने उसको अपनी कविता को ही एकमात्र सम्पत्ति मानने के भ्रम में डाला है। इस संघर्ष के पथ पर के अपने अनुभवों को यदि वह पद्य-बद्ध करेगा तो पायेगा कि उसकी कविता केवल मर्भस्पर्शी और सशक्त ही नहीं, वरन् साथ ही उसको अधिक ज्ञानी और सामाजिक

बनानेवालों भी है। तब कविता उसके हाथ में एक मूल्यवान अस्त्र की भाँति होगी'' आज की तरह अपार्थिव अस्तित्वहीन फूलों की सेज नहीं।''

भारतभूषण जी ने अपने वक्तव्य में मध्यमवर्ग के नवयुवक के अप्राकृतरूप से महत्वाकांक्षी,स्वप्नाभिलाषी तथा अन्त में पलायनवावो रंगीन कवि होने की बात बताई है। यह बात यथार्थ एवं प्रभावोत्पादक है। कवि का समाज और व्यक्ति के प्रति दृष्टिकोण स्वस्थ है। कवि के कर्त्तव्य के प्रति अच्छा प्रकाश डाला है।

कवितायें—

'अपने कवि से' सजग प्रगतिशीलता का उदाहरण कही जा सकती है। कवि को सख्त शिकायत है कि—

'नव-विचार, नव ज्ञान-रीति, नित-नित नवीन जीवन के स्वर
पर प्राचीना अब भी है वाणी की वीणा

इतना ही नहीं—

अप्सरा बना डाली तूने

षोडष-वर्षीया रूपवती वह पढ़ी लिखी लड़की पागल !
तू सुनता रहा मधुर नूपर-ध्वनि यद्यपि बजती थी चप्पल।

कटु यथार्थों से घिरा कवि जैसे उस सारी मधुरता से विद्रोह कर उठा है जो रूप और प्रेम के गीत गाती है। कारण—

तेरे विचार में केवल जो था सार, वही तेरा प्रेयसि के लिये प्यार।

और—'रूप है रक्त मांस, मृत्तिकाधीन'

'जीवन-धारा में भी कवि को लगता है कि जीवन की गति रुद्ध है, पंगु है और इससे मुक्त होने के लिये उसने साहस तथा निर्भयता का आह्वान किया है। उसे आशा है कि 'उग रहा पूर्व में नवालोक, अभिनव वसन्त।'

'सीमायें' आत्म-स्वीकृति में उन सीमाओं का चित्रण है जो कवि

को घेरे हैं और साथ ही बड़ी वास्तविक आत्म-स्वीकृति है :—

मानता हूँ, सभी सीमायें सदा मन जात
किन्तु मन क्या मुक्त है, उस पर नहीं क्या अपर बन्धन
जन्म जिस परिवार में मैंने लिया है,
जिस तरह की परिस्थितियों से आ सकी है यहाँ तक
जिन्दगी की सड़क मेरी
घूमती-फिरती, अनेकों मोड़ पर से काटती चक्कर
उन
परिस्थितियों का पिता है वर्ग और समाज पूँजी का और,
मेरे विकल मन की सभी सीमायें
वहीं से निःसृत हुई हैं।

इन पंक्तियों की विशेषता इनकी स्पष्टता है। कवि थका और व्याकुल अवश्य है किन्तु भ्रमित नहीं। उसे अपनी थकान और व्याकुलता के कारणों की पहचान है। 'मसूरी के प्रति' में समाजवादी हुँकार है।

'अहिंसा' व्यंग है जो यथेष्ट चुटीला नहीं बन पाया। 'फूटा प्रभात' सीधी-सादी सरस रचना है। फूटते प्रभात का सुन्दर वर्णन—

'फूटा प्रभात, फूटा विहान,
बह चले रश्मि के प्राण, विहग के गान,
मधुर निर्झर के स्वर झर-झर, झर-झर।

'प्रत्यावर्तन' में कवि 'गीतों की प्रतिमा के प्रति कोमल और स्नेहिल हो आया है। कविता सुन्दर है। '८'—'९' और 'चलते-चलते' भावुकता से भीगी और विदा-मिलन के धूप-छाँही डोरों से बुनी गई हैं किन्तु अपार्थिव या छायावादी नहीं।

इन कविताओं में हमें कवि-हृदय के उस पक्ष का परिचय मिलता है जो कठोर यथार्थ से बिंधकर भी नितान्त ऊसर नहीं हो गया है। 'बजती चप्पल' कहने वाले कवि को भी कहना ही पड़ा है—

अन्तिम विद्रोह, दो विदा आज आखिरी बार ओ इन्दुमुखी !

'११' भी सुन्दर रचना है :—

"सुला देते हैं पियासी, पिया-से गुंथ एक होने की
पिया के साथ सोने की
सुनहली चाह !"

'पियासी' और 'पियासे' का अभिनव प्रयोग सुन्दर लगता है और इन पंक्तियों की अकृत्रिमता अच्छी लगती है।

'जागते रहो' में जागते रहने की आवाज है और 'पथ-हीन' में कवि-उर की कुंठा के—जो पथ में विजड़ित हो गई है—स्वर हैं जो शास्त्र, न्याय-पंडित और क्रान्ति-वाणी से घिरी निश्चय नहीं कर पा रही है कि किस ओर जायें ?

नेमिचन्द्र के समान ही भारतभूषण भी। कहीं भी उलझे, अस्पष्ट या दुरूह नहीं हैं। इनकी प्रगतिशीलता अधिक संजग है और इनका कवि भी अधिक चैतन्य। यथार्थवादी होते हुए भी कवि कोरा बुद्धि-वादी नहीं बना है।

भारतभूषण का कलापक्ष भी अकृत्रिम और सहज है सप्रयास कुछ भी नहीं है, न भाषा, न भाव, न छन्द आदि।

मार्मिक न होने पर भी इनकी रचनायें सहज सबल हैं।

प्रभाकर माचवे

श्री माचवे जी 'कविता और पाठक के बीच में सीधा भाव-विनिमय होने के पक्ष में' हैं 'इन दोनों के बीच में व्यक्ति कवि को लाना अवांछित और अप्रस्तुत' समझते हैं। इनके अनुसार "व्यक्तिगत अनुभव के कुछ क्षण ऐसे होते हैं जो अत्यधिक सामाजिक आशय से गर्भित रहते हैं। उनमें मानव और प्रकृति, प्रकृति और संस्कृति के सतत संघर्ष के गति-

चित्र का ऐसा अंशांकन होता है कि उसकी पुनरावृत्ति असंभव है। कवितागत मौलिकता का अर्थ वही अंशांकन है। वह अंशांकन है सामाजिक परिपार्श्व में व्यक्ति की मानसिक प्रभाव-प्रक्रिया, वेदना-संवेदना, प्रगति-अगति आदि का प्रामाणिक बिम्ब-चित्रण।"

"छायावाद हिस्टीरिया की भाँति हिन्दी कविता का एक मानसिक रोग है+++" और प्रगतिवाद भी "अपनी प्रारम्भिक अवस्था में अभी अपरिपक्व और नाम का ही प्रगतिवाद है। उसकी जड़ें जीवन में धँसी हुई न होने से, जो स्फूर्ति वह पाता है वह एक बुद्धिजीवी, ऊर्ध्व-मूल, सीमित वर्ग से ही है (जो कि अधुना चौतर्फा Frustration का शिकार है)।"

"वस्तु की दृष्टि से, हिन्दी कविता में अभी विषयों की विविधता, व्यंग का तीक्ष्ण और सुरुचिपूर्ण प्रयोग, प्रकृति के सम्बन्ध में अधिक वैज्ञानिक दृष्टि, जन-जीवन के निकटतम जा कर ग्राम-गीत, लोक-गाथा और बाज़रू कहलाई जाकर हेय मानी जाने वाली बहुत सशक्त और मुहावरेदार जबान से नये-नये शब्द-रूपों और कल्पना-चित्रों को ग्रहण करना, और प्रयोगशील अभिव्यंजना के प्रति औदार्य आना चाहिए।

"कवितागत भाषा को भावानुकूल अदलने-बदलने का पूरा अधिकार होना ही चाहिए। ज्यों-ज्यों कविता की भाषा अधिकाधिक आज जनता की भाषा बनती चलेगी, उसमें प्रादेशिक शब्द अधिक आवेंगे, और यह इष्ट ही होगा। मगर शब्दों की अभिधामूला लक्षणा की अपेक्षा व्यंजनाशक्ति पर मेरी अधिक श्रद्धा है।

"निराला", 'नवीन' और नरेन्द्र शर्मा का आदर्श, भाषा के संबंध में, मै मानता हूँ; चूँकि तीनों ने इस दृष्टि से काफी प्रयोग किये हैं, रोमेंटिक, रीयलिस्टिक और क्लासिकल तीनों शैलियों में।"

श्री माचवे नवीन छन्द तथा अन्य भाषाओं के छन्दों के अपनाये जाने के पक्ष में हैं।

कवितायें :—

'वसंतागम' खेतों पर उतरती वसंत की रानी के स्वागत में कवि का गीत है। कविता सुन्दर है, ध्वनि-सौन्दर्य की विशेषता लिये है किन्तु 'आँखों में आकर्षण खासा' में 'खासा' शब्द का प्रयोग नवीन होने पर भी खटकता है और शेष कविता के वातावरण से मेल नहीं खाता।

'मेघमल्लार' अपने संगीत-सौन्दर्य के कारण आकर्षित करती है :–

मैं खींच रहा रहा हूँ आज अकाज लकीरें,
आ भर दे उनमें रंग रूप तू पीरें।
मैं लालहीन स्वरहीन छेड़ता वंशी,
तू भर दे उसमें नाद-माधुरी धीरे॥

'गेहूँ की सोच' और 'वर्षा' में असन्तुलित समाज-व्यवस्था पर आक्रोश है जो पर्याप्त उभर सका है।

'रेखा चित्र' तथा 'राही से' में दार्शनिकता को सीधी-सादी अभिव्यक्ति का बाना पहनाया गया है।

"देशोद्धारकों से" में चुटकी लेने में कवि सफल है :—

बाहर अर्ध नग्न पीड़ा
भीतर क्रीड़ा-लबरेज हरम
करुणा के आँगन में नेता
दे थोड़ी सी भेज शरम

कविता केवल आठ पंक्तियों की है किन्तु सार्थक है।

"वह एक' तथा 'निम्न मध्यवर्ग' में कटु यथार्थ को चुभते ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

बुड्ढा फकीर आशीर्वाद देकर पाव भर आटा चाह रहा है उनसे जिनका—

इस विराट आर्थिक विपन्नता की
चक्की में पिस पिस कर
बन रहा महीन खुद आटा है।

कविता क्या है, बड़ा मजेदार व्यंग है, कदाचित् आधुनिक कविता पर ही जो ब्रेकेटों के प्रयोग से और चुटीला बन गया है :—

'कविता क्या है आदिम-कवि की दृग-झारी से बरसा वारी'
(वे पंक्तियाँ जो कि गद्य हैं कहला सकती नहीं बिचारी) ! 'काशी के घाट पर' में कवि अपने में खो गया है। अन्तिम चार पंक्तियों में भीगी मस्ती का चित्रण है जो छू जाता है :—

क्या पता कहाँ आना जाना, क्या फूलों की परवाह पिया
इस क्षण दो ओठों में गाना, दो ओठों में हो चाह पिया
वह हिलराता मदमाता हो, मौजें लेता दरियाव पिया
मेघों में मुँह ढाँके मयंक, सुधि मन में गिनती घाव पिया

'मैं और खाली चा की प्याली' में वह अन्तर्द्वन्द्व है जो आज के प्रत्येक कवि के लिए अनिवार्य हो आया है। कविता मार्मिक है :—

'सब मरुभूमि प्राय: लगते हैं बूढ़े, कुरूप ये दर्शन-गुरु,
बिस्मिल्ला ही गलत, न करते हैं क्यों शुरुआत जीवन से ?

सारे तर्क और दर्शन को छोड़ कवि जीवन का आँचल पकड़ना चाहता है।

शेष कवितायें भी साधारण से ऊपर उठकर हैं।

श्री माचवे की रचनायें चमत्कारों से अनुप्राणित हैं। विचारों को अनुभूति से सिक्त करना उन्हें आता है और कविता के शिल्प पर भी उनका इतना अधिकार है कि वह उनकी रचनाओं को पठन योग्य बना देता है।

'तार सप्तक' के प्रारम्भ के तीन कवियों की भाँति ही इनकी कविताओं की विषय-वस्तु तो यही बीसवीं सदी, इसके कवि, इसकी आर्थिक तथा सामाजिक दुर्व्यवस्था ही है फिर भी इनकी रचनायें उन सब से सशक्त हैं।

भाषा पर कवि को इतना अधिकार है कि वह भाव के 'मूडों' में से सामंजस्य स्थापित कर लेती है। कहीं-कहीं जानबूझकर कुछ अटपटापन लाया गया है जो विशेष न खटकता है न जँचता है। छन्द रचना के इनके नवीन प्रयोग प्रभावशाली हैं।

गिरिजाकुमार माथुर

कवि का वक्तव्य :—

विषय और टेकनीक—

श्री माथुर विषय में अधिक टेकनीक को महत्व देते हैं। वे चित्र को अधिक स्पष्ट करने के लिए वातावरण के रंग भरते हैं। कहीं-कहीं तो वातावरण के चित्रण से ही विषय इंगित करते हैं। प्रत्येक कविता में प्रथम उसकी आधार-भूमि निर्माण करना आवश्यक समझते हैं। उन्हीं के शब्दों में "वातावरण के चित्रण के 'डिटेल' (Detais) में मैंने रंगों का आधार विशेष रूप से रखा है, किन्तु मैं चित्र को सदा हल्के रंगों की छाँहों के आवरण में लिपटा पसन्द करता हूँ। क्योंकि यथार्थ चित्र के सभी डिटेल मैं कला की दूरी से देखता रहा हूँ। मेरा यह विश्वास है कि अत्यधिक गहरे रंगों का प्रयोग कला में प्राचीनता (Mediaeval Frait) का द्योतक है। क्लासीकल विषयों पर गम्भीर शैली (Grand Style) में लिखी कविताओं में मैंने गहरे रंग प्राचीनता लाने के लिये रक्खे हैं। यहाँ मैंने आधार-भूमि विशालकाय कर दी है और डिटेल कम। डिटेल मैंने रोमानी कविताओं में ही अधिक भरे हैं। इसके अतिरिक्त मै चित्रकला को तीन दूरियाँ (Three distance) चित्र के पूर्णत्व (Rounding up) के लिए यत्र-तत्र लाया हूँ।"

भाषा और व्यञ्जना—श्री माथुर जी रोमानी कविता को हिंदुस्तानी के बोलचाल के छोटी और मीठी ध्वनि वाले शब्दों में लिखना पसन्द करते हैं। क्लासीकल कविताओं में आर्य गुण (Aryaniam) लाने के लिये बड़ी लम्बी और गम्भीर ध्वनि वाले शब्द रखते हैं।

अभिव्यञ्जनात्मक या शब्द-विन्यास वातावरण के रूप-भाव के अनुकूल नये बनाते हैं।

छन्द तथा ध्वनि-विधान—श्री गिरिजाकुमार जी मुक्त छंद ही पसंद करते हैं। उन्होंने गम्भीरता से विचार कर मुक्त छंद के कुछ नियम बनाये हैं जिनमें काव्य की सहज स्वाभाविक भावाभिव्यक्ति के साथ संगीतात्मकता पर कवि ने ध्यान दिया है। उनके ये नियम विचारणीय हैं तथा भावी काव्य के लिए सुन्दर प्रयोग हैं। उन्हीं के शब्दों में:—

"मुक्त छंद का मैंने सम्पूर्ण विधान रचा है। मुक्त छंद को दो भागों में विभक्त किया है, वर्णिक और यांत्रिक तथा इनके रूपान्तर। वर्णिक में मै कवित्त के विरामों को उनके रूपान्तर सहित लेकर चला हूँ। यह आवश्यक नहीं रक्खा कि कवित्त के पूर्ण विरामों पर ही पंक्ति समाप्त हो,अपितुअर्थ-विराम भी शुद्ध माने हैं,जब तक वे अनुच्चरित वर्ण (Unaccented Syllable) पर समाप्त न होकर उच्चरित (Accented) पर समाप्त होते हों। इस भाँति कवित्त के विरामों को लेकर कितने ही प्रकार की मुक्तछंद-पंक्तियाँ निर्मित की हैं। सवैये के विरामों पर स्थित एक नये प्रकार का बहुत संगीतमय मुक्तछंद लिखा है (आज हैं केसर रंग रंगे का)। एक कविता में एक प्रकार का मुक्त छंद प्रयुक्त होना आवश्यक समझता हूँ। यदि उच्चरित वर्ण-विन्यास (Syllable) से पंक्ति आरम्भ हुई तो समस्त पंक्तियाँ उच्चरित से ही प्रारम्भ होनी चाहिये। विरामांत पंक्तियों में यह नियम अनिवार्य कर दिया है। धारावाहिनी पंक्तियों में भी प्रथम पंक्ति का अर्ध-विराम द्वितीय पंक्ति में लेने का नियम रक्खा है। पंक्तियों के विरामों की ध्वनि-मात्रायें पूर्णतः सम एवं शुद्ध होना अत्यंत आवश्यक समझता हूँ। इन नियमों के विरुद्ध लिखा गया मुक्त छंद अशुद्ध मानता हूँ।

कवितायें —

श्री माथुर टैकनीक के प्रति वास्तव में अत्यंत सजग हैं और

जैसा कि उन्होंने स्वयं अपने वक्तव्य में इस सम्बंध में कहा है "कविता में विषय से अधिक टैकनीक पर ही ध्यान दिया गया है।" "माथुर का यह कहना भी उनकी रचनाओं में पूर्ण रूप से निभाया गया है कि प्रत्येक कविता में प्रथम उसकी आधार-भूमि निर्माण करना आवश्यक समझते हैं।' 'रेडियम की छाया','पानी भरे बादल', 'क्वाँर की दोपहरी', 'भीगा दिन', 'एसोसियेशंस' आदि सभी कवितायें भिन्न भिन्न वातावरण में प्रिय की सुधि से भीगे चित्रों को प्रस्तुत करती हैं पर जिन भिन्न भिन्न वातावरणों में ये चित्र उभरे हैं उनका चित्रण बड़ी सूक्ष्मता और लगन से किया है जैसे—

पास की दीवाल पर के चित्र सारे,
शून्य द्वारों पर पड़े रंगीन परदे,
वायु की साँसों-भरी एकान्त खिड़की,
वह अकेली सी घड़ी,
वह द्वीप ठण्डा
और रातों-जगा वह सूना पलँग भी
दूर होता जा रहा है दूर कितना।
लग सका है कुछ न अपना
जिन्दगी भर दूर ही रहना पड़ा है,
प्यारे के सारे जगत से।

यहाँ'ठ ण्डा द्वीप' और 'रातों जगा सूना पलंग' जैसे कवि के मन की उदासी और एकाकीपन को उभार कर व्यक्त कर देते हैं। अन्य कविताओं में जैसे 'कुतुब के खण्डहर' और 'आज हैं केसर रंग रँगे बन' आदि में कवि ने केवल वातावरण का ही चित्रण कर विषय इंगित किया है और उनके ये प्रयास पर्याप्त सफल हैं।

पं० नन्ददुलारे वाजपेयी ने अपने ग्रंथ 'आधुनिक साहित्य' में चूड़ी का टुकड़ा' शीर्षक कविता की हँसी उड़ाई है। उनके अनुसार इतनी छोटी सी बात चाहे कवि के लिए महत्त्वपूर्ण हो, पर उस पर कविता लिख डालना हास्यास्पद है। वाजपेयी जी अपने इस कथन में अनुदार

हो उठे हैं। तनिक भी विचार करने पर इस कविता की विशेषता स्पष्ट हो सकती है। प्रत्येक के जीवन में इतनी मधुरता से चूड़ी न झरे, किंतु ऐसे अनेक तरल-मधुर छोटे-छोटे प्रसंग अवश्य घटित होते जिनकी सुधि कुछ क्षणों को बहका ही लेती है। 'चूड़ी का टुकड़ा' ऐसी कविताओं की विशेषता ऐसी ही सुधियों को संकेत कर जगा देने में है। और फिर चूड़ी का झरना महत्त्वपूर्ण क्यों नहीं, जबकि एक चितवन, एक मुस्कान और एक इंगित भी काव्य के विषय बन गये हैं। वाजपेयी जी को 'कसे हुए बंधन में चूड़ी का झर जाना' की शृंगारिकता घोर आपत्तिजनक लगी है, किंतु वास्तव में ऐसा तो नहीं है। यह छोटी सी सुन्दर कविता एक मीठी सुधि का सफल चित्र उपस्थित करती है।

भाषा, व्यंजना, छंद तथा ध्वनि-विधान के सम्बंध में कवि ने बहुत कुछ कहा है और उसका निर्वाह उनकी रचनाओं में मिलता है। 'सप्तकों' के कवियों में श्री माथुर ही वास्तव में काव्य की टैकनीक पर न केवल स्पष्टता से सोच सके हैं वरन् उसका उचित निर्वाह भी कर सके हैं। श्री माथुर की कवितायें आत्मानुभूति का तत्त्व लिये हैं और रोमानी वातावरण की रेशमी जाली से झिलमिल हैं। निरी वर्णनात्मकता को भी टैकनीक के सौंदर्य ने सौंदर्य प्रदान कर दिया है।

'विजयादशमी' का क्लासिकल तत्त्व तथा 'अधूरा गीत' का दर्शन दोनों ही काव्यात्मकता का सौंदर्य लिये हैं। 'अधूरा गीत' की कुछ मार्मिक पंक्तियाँ हैं :—

यह फूल, चाँदनी, रूप, प्यार,
आँसू के अनगिन ताजमहल,
रागों की ठहरी गूँज,
असम्भव स्वप्नों की सुन्दर मिठास,
स्रष्टा तक मिटना कलाकार मिटने से,
पर गीतों के इन पिरामिडों,

इन धौलागिरि सुमेरुग्रों पर
मिट जाती स्वयं मृत्यु आकर।

इसी भाँति 'विजयादशमी' की अन्तिम पंक्तियाँ किसी भी दृष्टि-कोण से कम मार्मिक नहीं:—

देश, दिशायें, काल, लोक सीमा के आगे,
वह त्रिमूर्ति चलती जाती मन के फूलों पर,
अपने श्यामल गौर चरण से पावन करती
वर्षों, सदियों युगों-युगों के इतिहासों को।

'बुद्ध' कविता की कुछ पंक्तियाँ हैं:—

रनिवासों की नंगी बाँहों-सी रंगीनी
वह रेशमी मिठास मिलन के प्रथम दिनों की—
फीकी पड़ती गई अचानक;

\+ \+ \+

महागमन की जिस वैराग्य भरी बेला में
लय की पहली भोर बनी-थी
सेज और सिंहासन की मधुरात अखीरी।

और ये पंक्तियाँ सरल चमत्कारपूर्ण ढंग से अभिव्यक्ति को सफल बना देती हैं।

वास्तव में सप्तकों के कवियों में श्री माथुर ही ऐसे हैं जो अपनी कविता के काव्य-पक्ष के प्रति इतने आग्रही हैं। इनकी कवितायें न बुद्धि से बोझिल हैं और न वादों के धूम से आक्रांत। कवि अपने काव्य के प्रति ईमानदार है और इन रचनाओं की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनमें ऐसे शब्द भी कठिनाई से मिलेंगे जिनका प्रयोग निरर्थक अथवा अनचाहा हो। प्रयोगवादी कवियों द्वारा भाषा और छंद की स्वतंत्रता का दुरुपयोग न किया जाना एक बहुत बड़ी बात है।

"रामविलास शर्मा"

कवि का वक्तव्य—

रामविलास जी पहले आलोचक हैं फिर कवि। इनका वक्तव्य बड़ा सीधा-सादा है। आपने लिखा है, 'वात्स्यायन जी ने कविताओं के लिये परेशान कर डाला। नहीं तो कविता लिखने में बड़ी मेहनत पड़ती है और उनकी नकल करने में और भी ज्यादा। आशा है, यह प्रकाशन बस अन्तिम होगा।' कवि अपने ही शब्दों में कविता के बारे में 'सीरियस' नहीं है।

वैसे आपको ऐतिहासिक विषयों पर कविता लिखना अच्छा लगता है और गाँव तथा खेतों से प्यार है। नये कवियों में केदारनाथ अग्रवाल अपने 'भदेसपन' के कारण ज्यादा पसंद हैं।

कवितायें—

'कार्यक्षेत्र' में क्रांति की फसल काटने का स्वप्न है। 'कवि' में पहले कवि के उदास अंधेरे वर्तमान का चित्रण है और फिर कवि के इस विश्वास का—

'निर्मित होगी जन सत्ता की नगरी विशाल।'

'चाँदनी', 'प्रत्यूष के पूर्व', 'कतकी', 'सिलहार' आदि वर्णनात्मक कवितायें हैं। कवि को ग्रामीण जीवन का अच्छा अनुभव है किंतु वर्णनात्मकता साधारण ही बन पड़ी है। 'दिवा स्वप्न' में कुछ अनुभूति भी है।

'दारा शिकोह' साधारण ऐतिहासिक कविता है और यद्यपि कवि के अनुसार उसे ऐतिहासिक विषयों पर कविता लिखना अच्छा लगता है, वह इस कविता को इतना अच्छा न बना सका कि हमें भी अच्छी लगती।

'गुरुदेव की पुण्यभूमि में', 'हरे भरे बंगाल' की जो 'पुण्यभूमि' है मानवता के कवि-गुरु की दुर्दशा' का वर्णन है।

'सत्य शिवं सुन्दरम्' में 'इन्किलाब जिंदाबाद' और 'वन्दे मातरम्' के साथ 'हाथी, घोड़ा पालकी, जै कन्हैय्यालाल की' भी है। कविता में व्यंग्य है जो यथेष्ट चुटीला ही नहीं अच्छा लगता है, और यह कविता कदाचित् इसी अच्छा लगने का उदाहरण है।

'हड्डियों का ताप', 'किसान-कवि और उसका पुत्र' तथा 'समुद्र के किनारे' में लगभग एक ही स्वर है:—

दुःख के इस हहर-हहर में भी
ऊँचा उठता है जय का स्वर,
सीमा के बंधन तोड़ रही है
सागर की प्रत्येक लहर।

'परिणति' में गम्भीर अनुभूति का चित्रण है:—

'दुख की प्रत्येक अनुभूति में
बोध करता हूँ कहीं आत्मा है—'

रामविलास शर्मा की काफी कवितायें यहाँ प्रस्तुत हैं जो लगभग साधारण ही हैं। कवि की ये रचनायें विचार-प्रधान हैं। कवि को वर्तमान व्यवस्था से असंतोष और उज्वलतर भविष्य की आशा है जो बार-बार व्यक्त हुई है। किंतु न कवि का 'आक्रोश' न 'भदेसपन' और न उसकी वर्णनात्मकता ही हमें छू पाती है। रचनायें साधारण ही हैं, कदाचित् कवि ने ठीक ही कहा है कि वह अपनी कविताओं के बारे में सीरियस नहीं है।

शर्मा जी प्रयोगवादी से अधिक प्रगतिवादी हैं, और कवि से अधिक विचारक। कविताओं में मेहनत से लिखे जाने का आभास स्पष्ट है। इन कविताओं में साधारणतया सभी कुछ अच्छा है किंतु बस अच्छा ही है, विशेष कुछ नहीं। ये कवितायें गद्य के अधिक निकट प्रतीत होती हैं; अपने अर्थ-गौरव के कारण ही नहीं, रूप-विन्यास के कारण भी।

———

अज्ञेय

कवि का वक्तव्य

"कवि का कथ्य उसकी आत्मा का सत्य है। +++यह भी कहना ठीक होगा कि वह सत्य व्यक्ति-बद्ध नहीं, व्यापक है और जितना ही व्यापक है उतना ही काव्योत्कर्षकारी है।"

एक समय था जबकि काव्य एक छोटे से समाज की थाती था। उस समाज के सभी सदस्यों का जीवन एक रूप होता था, अतः उनकी विचार-संयोजनाओं के सूत्र भी बहुत कुछ मिलते-जुलते थे—कोई एक शब्द उनके मन में प्रायः समान चित्र या विचार या भाव उत्पन्न करता था। +++आज काव्य के पाठकों की जीवन-परिपाटियों में घोर वैषम्य हो सकता है, एक ही सामाजिक स्तर के दो पाठकों की जीवन-परिपाटियाँ इतनी भिन्न हो सकती हैं कि उनकी विचार-संयोजनाओं में समानता हो ही नहीं; ऐसे शब्द बहुत कम हों जिनमें दोनों के मन में एक ही प्रकार के चित्र या भाव उदित हों। यह आज के कवि की सबसे बड़ी समस्या है। ++साधारणीकरण और कम्यूनिकेशन (निवेदन) की समस्या है। और कवि को प्रयोगशीलता की ओर प्रेरित करने वाली सबसे बड़ी शक्ति यही है। कवि अनुभव करता है कि भाषा का पुराना व्यापकत्व उसमें नहीं है—शब्दों के साधारण अर्थ से बड़ा अर्थ हम उसमें भरना चाहते हैं पर उस बड़े अर्थ को पाठक के मन में उतार देने के साधन अपर्याप्त हैं। वह या तो अर्थ कम पाता है या कुछ भिन्न पाता है।"

"भाषा को अपर्याप्त पाकर विराम-संकेतों से, अंकों और सीधी-तिरछी लकीरों से, छोटे-बड़े टाइप से, सीधे और उलटे अक्षरों से, लोगों और स्थानों के नामों से, अधूरे वाक्यों से—सभी प्रकार के इतर साधनों से कवि उद्योग करने लगा कि अपनी उलझी हुई संवेदना की सृष्टि को पाठकों तक अक्षुण्ण पहुँचा सके। पूरी सफलता उसे नहीं मिली—जहाँ वह पाठक के विचार-संयोजक सूत्रों को नहीं छू सका,

वहाँ उसे पागल प्रलापी समझा गया या अर्थ का अनर्थ पा लिया गया। बहुत से लोग इस बात को भूल गये कि कवि आधुनिक जीवन की एक बहुत बड़ी समस्या का सामना कर रहा है—भाषा की क्रमशः संकुचित होती हुई सतर्कता की केंचुल फाड़कर उसमें नया, अधिक व्यापक, अधिक सारगर्भित अर्थ भरना चाहता है—और अहंकार के कारण नहीं, इसलिये कि उसके भीतर इसकी गहरी माँग स्पंदित है,-इसलिये कि वह 'व्यक्ति-सत्य' को 'व्यापक सत्य' बनाने का सनातन उत्तरदायित्व अब भी निभाना चाहता है। +++जो व्यक्ति का अनुभूत है उसे समष्टि तक कैसे उसकी संपूर्णता में पहुँचाया जाए—यह पहली समस्या है जो प्रयोगशीलता को ललकारती है।"

कवि 'स्वान्तःसुखाय' लिखने के पक्ष में नहीं है क्योंकि आत्माभिव्यक्ति 'अपनी अभिव्यक्ति—किन्तु किस पर अभिव्यक्ति ? इसलिये अभिव्यक्ति में एक ग्राहक या पाठक या श्रोता' कवि अनिवार्य मानता है। "ऐसा प्रयोग अनुज्ञेय नहीं है जो किसी की किसी पर अभिव्यक्ति के धर्म को भूलकर चलता है +++भाषा उनके व्यवहार का माध्यम है, और उसकी माध्यमिकता इसी में है कि वह एक से अधिक को बोधगम्य हो, अन्यथा वह भाषा नहीं है। जीवन की जटिलता को अभिव्यक्त करने वाले कवि की भाषा का किसी हद तक गूढ़, 'अलौकिक' अथवा दीक्षा द्वारा गम्य (Csoteic) हो जाना अनिवार्य है, किन्तु वह उसकी शक्ति नहीं, विवशता है, धर्म नहीं आपद्धर्म है।"

"अधुनिक युग का साधारण व्यक्ति यौन वर्जनाओं का पुंज है।+आज के मानव का मन यौन परिकल्पनाओं से लदा हुआ है और वे कल्पनायें सब दमित और कुण्ठित हैं। उसके उपमान सब यौन प्रतीकार्थ रखते हैं। +++और इस आन्तरिक संघर्ष के ऊपर जैसे काठी कसकर एक बाह्यसंघर्ष भी बैठा हुआ है, जो व्यक्ति और व्यक्ति का नहीं, व्यक्ति-समूह और व्यक्ति-समूह का, वर्गों और श्रेणियों का संघर्ष है। व्यक्तिगत चेतना के ऊपर एक वर्गगत चेतना भी लदी हुई हैं और उचितानुचित की भावनाओं का अनुशासन करती है, जिससे

एक दूसरे प्रकार की वर्जनाओं का पुंज खड़ा होता है, और उनके साथ ही उनके प्रति विद्रोह का स्वर जागता है।"

कवितायें—

"कविता की पृष्ठभूमि कवि के शब्दों में 'व्यक्तिगत चेतना के ऊपर एक वर्ग-चेतना भी लदी हुई है और उचितानुचित की भावनाओं का अनुशासन करती है जिससे एक दूसरे प्रकार की वर्जनाओं का पुंज खड़ा होता है और उनके ही उनके प्रति विद्रोह का स्वर जागता है।' कविता में शब्दों की टंकार है, भावों की झंकार नहीं। कवि ने एक वातावरण की सृष्टि का प्रयास किया है किन्तु जैसे वह शब्दाडम्बर के वायुमण्डल में उलझ कर रह गया है।

दूसरी कविता है 'सावन-मेघ'। इसके सम्बन्ध में भी कवि कह चुका है कि आज के मानव के उपमान सब यौन प्रतीकार्थ रखते हैं। कविता में इस कथन का अच्छा निर्वाह है। कुछ पंक्तियाँ एक विशेष व्यापार की ओर इंगित करती हुई चित्र प्रस्तुत करती हैं :—

स्नेह से आलिप्त
बीज के भवितव्य से उत्फुल्ल
बद्ध
वासना के पंक-सी फैली हुई थी
धारयित्री सत्य-सी निर्लज्ज, नंगी
'औ' समर्पित।

'उषःकाल की भव्य शान्ति' में यथार्थ के कुछ चित्रों को दार्शनिकता का बाना पहनाकर प्रस्तुत किया गया है। कवि की दृष्टि 'रिरियाता कुत्ता', 'प्रार्थी मुल्ला' और 'अहम्-लीन भिक्षुक' को देखकर फिर स्वयं में लौट गई है जैसे वे सब उसी के प्रतिबिम्ब हों। कविता का दर्शन-पक्ष सबल है किन्तु अभिव्यक्ति उसी दर्शन के बोझ से बोझिल सी।

'शिशिर की राका-निशा' कवि के इन विचारों का प्रतिनिधित्व करती है कि 'वास्तव की बीभत्सता की कसौटी पर चाँदनी खोटी

दीखती है।' कवि ने 'चारणकाल से लेकर छायावाद तक की कविता को तात्कालिक परिस्थति अथवा जीवन-प्रणाली पर घटित करके' समझ लिया है। 'किन्तु फिर भी आज के जीवन के दबाव की अभिव्यंजना का मार्ग उसे नहीं दीखता।' कविता में "धैर्य-धन गदहा" 'वन्य बिलार' और 'नग्न बुच्चे दई थारे पेड़" अभिव्यक्ति के सबल माध्यम हैं।

"जैसे तुझे स्वीकार हो' में आत्मनिवेदन है 'प्राणाधार सखे चिन्मय देवता' के प्रति। तत्सम, समासयुक्त शब्दावली छायावादी कविताओं का स्मर . दिला देती है और—

वक्ष उद्वेलित हुआ है स्तब्ध,

'चरण की ह चाप किंवा छाथ तेरे तरल चुम्बन की'—भी छायावादी चित्रों की याद दिलाते हैं।

'जयतु हे कटक चिरन्तन' कवि के अनुसार 'जैसे तुझे स्वीकार हो' कविता को पैरोडी है और एक सफल प्रयास है।

'वर्ग-भावना—सटीक' शोषकवर्ग के प्रति तीखा व्यंग है जो निम्न पंक्तियों में खूब उभरा है—

टीका (यद्यपि भाष्यकार है दुर्मुख)
हम लोगों का एक मात्र श्रम है—सुरति-श्रम,
उस अन्त्यज का एक मात्र सुख है—मैथुन-सुख।'

"और प्रेम ? एक थका—माँदा पक्षी, जो साँझ घिरती देखकर आशंका से भी भरता है और साहस संचित करके लड़ता भी जा रहा है। निराशा और कुण्ठा से धैर्यपूर्वक लड़ता, निष्कम्प अवस्था से कुछ नीचे—आज के प्रेम का सर्वोत्तम सम्भव रूप यही है। अंधकार और आलोक का अनुक्रम, धृति और गति का सामंजस्य, वासना और विवेक का संयोग, उदासी और खण्डन के बीच में विश्वास का मुक्त स्वर जो सबल कई बार हो, उठता है पर निष्कम्प कभी नहीं हो पाता—यह है अज्ञेय जी का एक कथन, जो उन्हीं के अनुसार 'रात

होते—प्रात होते'*, 'मुक्ति', 'आज मैं पहचानता हूँ', 'बाहु मेरे रुके रहे' कविताओं में प्रतिध्वनित है। वास्तव में इन सभी कविताओं में कवि के उक्त कथन की प्रतिध्वनि अवश्य है; कहीं क्षीण, कहीं कुछ सबल, किंतु अधिक मार्मिक कहीं भी नहीं।

चोट नहीं, वही मेरी जीवानुभूति है
खुला ही रहे यह मेरा वातायन वेदना का,

+ + +

हटो मत मेरी प्यासी दृष्टि के क्षितिज से—
मेरे एक मात्र संगी चेहरे उदास—

इन पंक्तियों में चोट और वेदना के प्रति लगभग वे ही उद्‌गार हैं जो छायावादी कविता की विशेषता थे और फिर—

और साध में—मेरा परमतम तत्त्व वलयित
साथ तेरे प्राण के—

यह कहकर कवि की आत्मा ने ऊँचा उठना चाहा है। किन्तु यह सभी कुछ इस रूप में प्रस्तुत नहीं किया जा सका है जिसकी अपेक्षा की जा सकती थी।

कवि ने कहा है—

अल्पतम भी तारिका की चमक को जब देखते ही,
तुरत निःशब्द तुलना में तुम्हारे
कुछ उनींदे लोचनों की युगल जोड़ी कर लिया करता कभी
था याद।

इस प्रकार के स्थल मार्मिक अनुभूति से अनुप्राणित होने पर भी अभिव्यक्ति की बोझिलता के कारण मर्मस्पर्शी नहीं बन पाये हैं।

'बाहु मेरे रुके रहे' की कुछ पंक्तियाँ हैं :—

किसी सूनी वाटिका की दूब से आवृत
विस्मृता-सी, स्मरण की नीरव उसासों के सिरिस से

* 'चार का गजर', 'चेहरा उदास', 'चरण पर धर चरण'

परस से भी सिहर-सकुचाती
वीथिका के उभय-तट मालंच से अवलम्बिता,
दो लताओं के प्रलम्बित अंकुरों—से
प्राण दोनों के
व्यर्थ करके शब्द को, शब्दार्थ को, स्वर को,
भूल करके प्रस्फुटन, विकसन, फलागम—
अहेतुक आश्वासना से
बस, झुके रहे।
बाहु मेरे घेर कर तुमको रुके रहे।

यह है कवि की भाषा और उसके काव्य के कलेवर का एक उदाहरण। कितनी बोझिल शब्दावली है जिसके कारण इन कविताओं की दशा आभूषणों के बोझ से दबी हुई रमणी के समान हो गई है। अज्ञेय के काव्यांशों में कवित्व का अभाव नहीं है, अनुभूतियों की कमी नहीं है और कवि का भाषा पर पर्याप्त आधिपत्य भी है किन्तु फिर भी जैसे कवि अपने राजमार्ग से भटका हुआ है। (शायद किसी गूढ तत्त्व की खोज में)। भाषा पर अधिकार होना एक बात है और काव्य में उसका उचित निर्वाह दूसरी, अन्यथा व्याकरण एवं भाषाशास्त्री के लिये काव्य-सृजन बाँये हाथ का खेल होता। उलझी उपमायें, बहकी सी कल्पनायें काव्य में केवल अद्भुत रस का आभास दे सकती हैं।

'बदली के बाद' 'भादों की उमस' और 'किसने देखा चाँद' अन्य छोटी कवितायें हैं जिनमें विशेष उल्लेखनीय कुछ भी नहीं है।

'अज्ञेय' वर्तमान युगके लब्ध-प्रतिष्ठ साहित्यकार है। उपन्यास और कहानी के क्षेत्र में तो उनकी विशेष ख्याति है। प्रस्तुत कविताओं में अज्ञेय के जिस कवि-रूप की झलक है उससे हमें न चाहते हुए भी काफी शिकायतें हैं।

कवि ने अपने वक्तव्य में काफी महत्त्वपूर्ण बातें कहीं हैं, और कोई भी सहृदय उनके वक्तव्य से पूर्णतया सहमत होने में न झिझकेगा।

किंतु फिर भी उनकी ये काव्य-रचनायें हमें कुछ-सोचने समझने को बाध्य अवश्य करती हैं, अनुप्राणित नहीं करती। कवि ने स्वयं माना है कि 'कम्यूनिकेशन' की समस्या आज के कवि की सबसे बड़ी समस्या है और वे स्वान्तःसुखाय लिखने के पक्ष में भी नहीं हैं। किंतु फिर भी इन कविताओं का शब्दाडम्बर उनका एक ऐसा दोष है जिसने काव्य के अन्य सुन्दर तत्त्वों को उभरने नहीं दिया। भाषा की कुहेलिका में अनुभूति धुँधली होगई है और गति की पकड़ उलझ सी गई है।

कवि सशक्त कलाकार है, उसे जीवन-जगत् के मर्मों की पहचान है—इसमें सन्देह नहीं। इन रचनाओं में अज्ञेय के 'टचेज' अवश्य हैं पर कहीं भी वे पूर्णतया सशक्त और उभरे नहीं हैं।

———

दूसरा सप्तक

'दूसरा सप्तक' सात और कवियों को हमारे सामने प्रस्तुत करता है। संग्रह में क्रम के अनुसार प्रथम कवि हैं—

श्री भवानीप्रसाद मिश्र

कवि का वक्तव्य—

मिश्र जी ने अपना वक्तव्य एक प्रकार से विवश होकर ही लिखा है, कारण 'एकदम घटना-विहीन अविचित्र मेरे जीवन की कथा है,' किन्तु 'वक्तव्य सप्तक की बनावट का एक आवश्यक अङ्ग है' इसलिए उन्हें देना ही पड़ा।

अपने सम्बन्ध में उन्हें किसी असाधारणता की, साधारण आदमी से हटकर कुछ विशेष होने की कोई अनुभूति नहीं है।

जब उन्होंने लिखना आरम्भ किया, तो छायावाद धूम की थी, किन्तु मिश्र जी को निराला, प्रसाद और पन्त में से 'किसी एक की भी एक पूरी कविता बहुत नहीं भा गई।' वड्सवर्थ और ब्राउनिंग बहुत अच्छे लगते थे और वड्सवर्थ की एक बात कि 'कविता की भाषा यथासम्भव बोलचाल के करीब हो' 'बहुत पटी '

सन् ४२ में रवीन्द्रनाथ ठाकुर की लगभग सभी रचनायें पढ़ीं और उनका बड़ा असर पड़ा। 'उस असर में अनेक कवितायें लिखी हैं। जो अगर कभी कविता के रूप में छप सकीं तो नाम सोच लिया है— "अनुगामिनी '। 'अनुगामिनी" की कविताओं को कवि अपनी नहीं समझता क्योंकि उनपर कवि से अधिक छाप रवीन्द्रनाथ की है। मिश्र जी ने लिखा है—"दूसरा सप्तक' की 'असमञ्जस' कविता यद्यपि रवीन्द्रनाथ की किसी भी एक या अनेक कविताओं की छाया नहीं है, मगर मैं उसे अनुगामिनी तो मानता हूँ। उसका छन्द, उसका प्रवाह, उसकी सजावट, ये मेरे नहीं हैं। अव्यक्त की ओर उसमें जो इशारा है वह भी मेरा नहीं है। मैं भगवान की बात कम करता हूँ— जब करता हूँ तो रहस्य की तरह नहीं।"

यह कविता 'दूसरा सप्तक' में नहीं है। कदाचित् वह कवि की विशेष प्रवृत्ति की द्योतक होती।

कवि को विश्वास सा है कि 'मैंने वही लिखा है जो मेरी ठीक पकड़ में आ गया है। दूर की कौड़ी लाने की महत्वाकांक्षा मैंने कभी नहीं की।' और कवि की कोशिश है कि 'दर्शन में अद्वैत, वाद में गान्धी का और टैकनीक में सहज-लक्ष्य ही मेरे बन जायें।'

'दूसरा सप्तक' की कविताओं को मिश्र जी ने अपनी प्रतिनिधि कवितायें नहीं माना है। 'आशागीत', 'दहनपर्व', 'बँधा सावन' अश्रु और आश्वासन' आदि लम्बी कविताओं से उनके विषय में ठीक अन्दाज लगता। इन कविताओं में कवि ने बहुत मामूली रोजमर्रा के सुख-दुःख कहे हैं जिनका एक शब्द भी किसी को समझना नहीं पड़ता। 'शब्द टप-टप टपकते हैं फूल से; सही हो जाते हैं मेरी भूल से।'

बेशक 'भूल से' ही यह सब मेरे हाथों बन पड़ता है क्योंकि कभी कोई दर्शन, वाद या जिसे टैकनीक कहते हैं' कवि ने नहीं सोचा।

कबितायें—

'सतपुड़ा के जंगल' वर्णनात्मक रोचकता लिए लम्बी कवि ता।

सतपुड़ा के जंगल का, उसके वातावरण का चित्रण है। भाषा सरल है और वर्णन करने का ढङ्ग भी बहुत सीधा-सादा, जैसे—

सात-सात पहाड़ वाले,
बड़े-छोटे झाड़ वाले,
शेर वाले, बाघ वाले,
गरज और दहाड़ वाले,

छायावादी युग की दुरूह कल्पनाओं और जटिल शब्द-जाल के बाद ऐसी कविता देखकर बहुत से पाठकों को बड़ा हलकापन लग सकता है किन्तु 'सतपुड़ा के जंगल' कदाचित् इतनी हलकी हो गई है कि प्रभाव डालने में असमर्थ है।

'सन्नाटा' भी वर्णनात्मक कविता ही है किन्तु कुछ अधिक रोचक और सुन्दर है। सन्नाटे को पढ़ने और समझ पाने और फिर उसे चित्रित करने का यह प्रयास साधारण तथा सफल है। कुछ पंक्तियाँ बड़ी सरल, सहज, चमत्कार-विहीन होने पर भी मन को छू लेती हैं:—

"रानी बोली, पागल को जरा बुला दो,
मै पागल हूँ, राजा, तुम मुझे भुला दो;
मै बहुत दिनों से जाग रही हूँ राजा!
बंसी बजवाकर मुझ को ज़रा सुला दो।"

'बूँद टपकी एक नभ से' में प्रयोगवादी बारीकी और नवीनता है। एक छोटी सी बूँद का टपकना कवि से बहुत कुछ कहला देता है—

बूँद टपकी एक नभ से,
और जैसे पथिक,
छू मुस्कान, चौंके और घूमे
आँख उसकी, जिस तरह
हँसती हुई सी आँख चूमे
उस तरह मैंने उठायी आँख।

इन पंक्तियों में जहाँ एक ओर कवि की सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति का परिचय है वहाँ दूसरी ओर प्रयोगवादी अभिव्यक्ति का एक उदाहरण भी।

'बूँद टपकी एक नभ से' में पर्याप्त चित्रात्मकता और ताजी कल्पनाएँ हैं।

'मङ्गल वर्षा' की शब्द-योजना लोक-गीतों की धुन पर है। कविता में काफी मधुरता और अभिव्यन्जना में ऐसी ग्रामीण सहजता है जो 'बूँद टपकी एक नभ से' के बाद अनोखी ही लगती है और कवि की प्रतिभा की विशालता का परिचय देती है—

फिसली-सी पगडण्डी, खिसली आँख लजीली री,
इन्द्र-धनुष रँग रँगी, आज मैं सहज रँगीलीरी,
रुन झुन बिछिया आज, हिला-डुल मेरी बेनी री,
ऊँचे-ऊँचे पैंग, हिंडोला सरग-नसेनी री,

कविता में लोकगीतों की सी ही गूँज है और यह एक सफल प्रयास है।

'टूटने का सुख' महादेवी की शैली की याद दिला देता है, अभिव्यक्ति में नहीं, अनुभूति में ही। जैसे श्रीमती वर्मा दुःखों में डूबकर अमूल्य तत्व निकाल लेती हैं वैसे ही यहाँ कवि—

'आज आशायें कभी की चूर होने जा रही हैं,
और कलियाँ बिन खिले कुछ धूर होने जा रही हैं,
बिना इच्छा, मन बिना,
आज हर बन्धन बिना।
इस दिशा से उस दिशा तक छूटने का सुख।
टूटने का सुख।

कवि टूटने, निखर जाने की अप्रियता में भी इस दिशा से उस दिशा तक छूटने के सुख की खोज कर लेता है। छायावाद की उलझी अभिव्यक्ति यहाँ सुलझे ढङ्ग से है, अतः कविता अच्छी लगती है।

'प्रलय और 'स्नेह-शपथ' पर गान्धी के मानवतावादी आदर्श की छाप है। 'स्नेह-शपथ' में कवि कहता है—

यह पकड़ी उसने गलत राह—
तो सख्त बात से नहीं, स्नेह से
काम जरा लेकर देखो,
अपने अन्तर का नेह अरे, देकर देखो।

'प्रलय' कविता में सृष्टि की अनिवार्य नश्वरता के प्रति इङ्गित कर कवि मानव के दुःख-दर्द मिटाने को प्रेरित होता है। 'स्नेह-शपथ' में जीवन में स्नेह के बल पर आस्था प्रकट की गई है।

ये दोनों कवितायें सद्भावनाओं से भीगी हैं और घृणा, वैर, कटुता से भरे इस युग में प्यार, स्नेह, मधुरता का सन्देश देती हैं। 'असाधारण' कविता में रुखी और प्रभावविहीन उपदेशात्मता है।

'गीत-फरोश' कविता एक तीखा व्यंग्य है। चलती भाषा और वार्तालाप, शैली के कारण व्यंग्य बड़ा चुटीला बन गया है। आधुनिक कवियों की अप्रतिष्ठा, कमजोरियों और विवशता पर यह व्यंय बड़ा सफल बन पड़ा है। प्रस्तुत रचनाओं में यह कवि की सबसे बड़ी अच्छी कविता है। केवल इसी कविता के बल पर कवि स्मरणीय हो सकता है।

'वाणी की दीनता' कलाकार की असमर्थता चित्रित करती है।

पहली बात, जो मिश्र जी की कवितायें पढ़ने के बाद सबसे अधिक प्रभावित करती है वह है इनके वक्तव्य और रचनाओं में सामन्जस्य। कवि ने वास्तव में 'दूर की कौड़ी' लाने की व्यर्थ चेष्टा नहीं की है। जो कहना चाहा है, बस कह दिया है।

कविताओं में से 'गीत फरोश' और 'बूँद टपकी एक नभ से' ही प्रभाव डाल पाती है। शेष सबमें प्रभाव डालने की शक्ति का आभास तो होता है किन्तु दर्शन नहीं होते। यह ठीक है कि अनगढ़ और स्वाभाविकता में अपना एक सौन्दर्य होता है किन्तु यदि उसे कुछ सँवार-सुधार दिया जाय तो वह अधिक सज ही उठेगा। इस सँवारने-सुधारने का प्रयास कवि की प्रतिभा की कसौटी भी है। बात कही जाय, सादे

सहज ढङ्ग से, इस प्रवृत्ति का स्वागत है किन्तु वह कहना इतना साधारण रहे कि प्रभाव ही न डाल सके, यह तो ठीक न होगा। वस्तु या विषय-विशेष से प्रभावित होकर होकर ही तो कवि को कहने के लिए विवश होना पड़ता है किन्तु यदि उस कहने में सुनने वालों को प्रभावित करने की क्षमता न हो तो वह जीवित कैसे रहेगा।

मिश्र जी के पास कहने के लिए काफी है, कहने का ढङ्ग भी सहज और अपने ढङ्ग का है किन्तु यदि कवि ने अपनी प्रतिभा का और कुछ अधिक उपयोग किया होता तो रचनायें अधिक सुन्दर बन सकती थीं। अनुभूति कितनी मर्मभरी क्यों न हो अभिव्यक्ति का भी अपना महत्व होता है। कहना यही है कि अनुभूति का कवि दानी है किन्तु अभिव्यक्ति के प्रति कदाचित् जानबूझकर उदासीन।

भाषा भी सरल सहज है और विभिन्न कविताओं के विभिन्न मूडों से सामंजस्य कर लेती है, जैसे 'गीतफरोश' कविता की भाषा जितनी चुस्त-दुरुस्त है, 'मङ्गल गीत' की उतनी ही सहज मधुर। 'प्रलय' कविता में एक स्थान पर 'नहीं' के स्थान पर 'मत' शब्द का प्रयोग है जो खटकता है—

एक दिन होगी प्रलय भी
मत रहेगी झोंपड़ी
मिट जाँयगे नीलम निलय भी—

उसी कविता की कुछ पंक्तियाँ :—

क्या बुझायेंगे कि फायर पम्प
मन मारे जलेंगे······

'बड़वानल' और 'विद्युत की अनय' के साथ 'फायर पम्प' को ले आना कुछ जँचता नहीं, वैसे यह भी प्रयोग विशिष्ट माना जा सकता है, फिर भी रस-भङ्ग सा होता है।

शकुन्तला

कवि का वक्तव्य :—

मिश्रजी के बाद हैं, सुश्री शकुन्तला माथुर। आप वास्तविक जीवन में श्री गिरिजाकुमार माथुर की पत्नी हैं। जन्म तथा शिक्षा-दीक्षा दिल्ली में हुई।

शकुन्तलाजी इस संग्रह की एकमात्र महिला कवि हैं और उन्हें कवि की पदवी स्वीकार करने में अत्यधिक संकोच है—'कुछ अजीब सा लगता है।' फिर भी आपने 'काव्य का माध्यम इसीलिये अनायास अपना लिया' कि इसे अपनाकर उनके शेष अभावों की पूर्त्ति सी हो गई।

साहित्यिक जगत् के सन्मुख शकुन्तलाजी को लाने का श्रेय सम्पादक को ही है, अन्यथा 'मैंने जब भी कुछ लिखा उसे मन की मौज समझ कर छोड़ दिया और मेरे पतिने भी उसे सदा हँसी में टाल दिया।'

काव्य-रचना का आरम्भ आपने अपने आपको ही सन्तुष्ट करने के लिये किया था—'मैंने जो कुछ जैसा मन में आया लिखा है, नियमों का कोई विचार ही उत्पन्न नहीं हुआ।'

किन्तु आगे चलकर 'ज्यों ज्यों मेरा काव्य-क्षेत्र विकसित हुआ, मैने यह अनुभव किया कि स्वान्तःसुखाय काव्य की सार्थकता तभी है जब वह प्रत्येक को स्वान्तःसुखाय लगे···कवि की आकांक्षायें भावनायें इतनी विस्तृत हों कि उनकी सीमा में जन-जन की भावनायें आ सकें'—

कवितायें

पहली कविता है 'दोपहरी'। गर्मी की तपती दोपहर में पेड़ों की 'जली छाँह'के साथ कवियित्री ने ताँगा,उसका घोड़ा और एक ग्रामीण पर भी दृष्टि डाली है। एक ओर जहाँ—

कभी एक ग्रामीण धरे कन्धे पर लाठी
सुख-दुख की मोटी सी गठरी
लिये पीठ पर
भारी जूते फटे हुए
जिनमें से थी झाँक रही गाँवों की आत्मा
जिन्दा रहने के कठिन जतन में
पाँव बढ़ाये आगे जाता

वहाँ दूसरी ओर—

बड़े घरों के श्वान पालतू
बाथरूम में पानी की हलकी ठंडक में
नैन मूँद कर लेट गये थे

साथ साथ हमारे सन्मुख रख अनायास ही काफी बड़ी बात कह डाली है।

'ये हरे वृक्ष' और 'सुनसान गाड़ी' साधारण रचनायें हैं।

'इतनी रात गये' और 'केसर रङ्ग रंगे आँगन' में अभिव्यंजना का सरल सहज सौन्दर्य है—

सुन्दरियों के गोल बदन
लिपटे गुलाल से
ज्यों सूरज पर सन्ध्या बादल
जोर जमा खींचे पिचकारी
मुरकी जाये नरम कलाई
छोड़ फुआरें सब रँग डालें
बजें चूड़ियाँ
फिसलें साड़ी
मसल गये रँग
मसल गये तन
मसक गयी अब मूठी गोरी

किरण उतर कर नभ से आयी
आज खेलने को ज्यों होली ।

इन पंक्तियों का शब्द-चित्र पर्याप्त सुन्दर बन पड़ा है । भाषा में भावों का सौन्दर्य मुखर है और अछूतापन न होने पर भी एक ताजगी सी अवश्य है ।

'जानबूझकर नहीं जानती' में कवियित्री ने नयी नयी उपमायें प्रस्तुत की हैं—

मैल भरी दीवारों पर राजों ने फेरा चूना,
किसी भिखारिन के घर में; बहुत दिनों के
पीछे, मन्द जला हो चूल्हा ।
बूढ़े की काया में फिर से एक बार
यौवन हो कूदा——आदि

और इन उपमाओं में नवीनता ही है मार्मिकता नहीं ।

'लीडर का निर्माता' का व्यंग सशक्त है—

'निकल रही छपकली-सी
लड़की दरवाजे से
गली का पिल्ला बन
फिर रहा बच्चा
लिये खाली बोतल
मट्टी के तेल की ।

इन पंक्तियों में यथार्थ का यथार्थ चित्रण है और एक ओर 'लीडर' तथा दूसरे ओर 'लीडर के निर्माता' के चारों ओर छाये वातावरण का साथ साथ चित्रण कर एक कठोर वास्तविकता का उद्घाटन सहज चमत्कारपूर्ण ढङ्ग से किया गया है ।

अन्तिम कविता है "ताजा पानी" । इसमें 'नया' शब्द का उन्मुक्त प्रयोग कर नयेपन की चर्चा की गई है—

लिये ताजा नया पानी
चला आता है यह चश्मा

नया मानस लगाता आ रहा है
नया सूरज बनाता आ रहा है।

श्रीमती माथुर ने अपने वक्तव्य में लिखा है कि 'बहुत सी रचनाओं में मनमाने छन्द हैं, मनमानी गति है, मनमाना संगीत है, प्रतिष्ठित रीति के अनुसार यह कहिये कि नहीं है' किन्तु रचनाओं को पढ़कर हमें लगता है कि वास्तव में आपने ऐसी मनमानी भी नहीं की है जिसे मनमानी कहा जा सके। यों तो प्रयोगवादी कवि के लिये काव्य के हर पहलू पर प्रयोग करने की छूट क्षम्य है—एक प्रकार से इसका उसे अधिकार है—किन्तु शकुन्तला जी ने अपने जिस काव्य-विषयक दृष्टिकोण को अपने वक्तव्य में स्पष्ट किया है उनकी रचनायें उसे स्पष्टतर कर देती हैं। यदि यह कहा जाय कि सप्तक के कवियों में आप ही एक ऐसी हैं जो वास्तव में प्रयोगवादियों की कोटि में सम्मिलित की जाने पर भी किसी भी प्रकार की दुरूहता से मुक्त हैं, तो अनुचित न होगा।

आपकी रचनाओं में नयापन है, ताजगी है, और गहरी मार्मिकता न होने पर भी सहज ही विस्मृत कर दिया जाने वाला हलकापन भी नहीं है। भाषा सरल प्रवाहमयी है, शब्द-चित्र बनाने के प्रयास सफल हैं। कहीं-कहीं मर्मभरी पकड़ का आभास भी मिलता है जैसे 'लीडर का निर्माता' और 'दोपहरी' की चुभन चुभ जाती है। सब मिलाकर यह कहा जा सकता है कि यदि कवियित्री अपनी काव्य-शक्ति को साधना का बल दे सके तो उनका स्थान प्रथम कोटि के लिये सुरक्षित है।

अपने वक्तव्य में कही निम्न पंक्तियों के लिये वे साधुवाद की पात्र हैं—

"काव्य की सार्थकता तभी है जब वह प्रत्येक को स्वान्तःसुखाय लगे···वर्ना ऐसी कविता फूहड़ होगी, उससे तो पैम्फलेटों का गद्य ही बेहतर है।"

और ये शब्द हैं प्रयोगवादियों की कोटि में सम्मिलित कियेजाने

वाले एक कवि के ही । प्रयोगवादियों की "स्वान्तःसुखाय" प्रवृत्ति के लिये जो अपने ही व्यक्तित्व में उलझ कर एक उलझन बन जाती है, ये पंक्तियाँ मार्गदर्शक बन सकती हैं । कविताओं में व्यक्तित्व की आवाज हो अवश्य, किन्तु वह शक्ति भी हो कि वह व्यक्ति की ही न रह कर समस्त विश्व को छू सके अन्यथा वाद की दृष्टि से उसका कुछ भी महत्व क्यों न हो, काव्य और जीवन के क्षेत्र में वह अपना स्थान न बना सकेगी । स्वान्तःसुखाय रचनायें भी यदि वास्तव में गहरी मार्मिक अनुभूतियों से अनुप्राणित हैं तो उन्हें 'बहुजनहिताय' होने में विलम्ब न लगेगा किन्तु यदि स्वान्तःसुखाय के नाम पर केवल अनर्गल और बेतुकी किलेबन्दी की जाय तो वह स्वयं कवि के लिये भी कदाचित् सदैव स्वान्तःसुखाय न रह सके । कारण नितान्त स्वान्त-सुखाय अनुभूतियाँ भी तो समय के साथ अपना प्रभाव खो सकती हैं । जब समय और संसार एक व्यक्ति और उसके व्यक्तित्व को ही सम्पूर्ण-तया बदल सकते हैं तो घने बादलों में क्षण भर के लिये झलक कर ओझल हो जाने वली विद्युत सी इन अनुभूतियों का क्या कहना !

———

हरिनारायण व्यास

कवि का वक्तव्य

श्रीमती शकुन्तला माथुर के बाद हैं श्री हरिनारायण व्यास । कविता की ओर बचपन से आकर्षित थे । प्रभाकर माचवे और गजानन मुक्तिबोध के सम्पर्क से 'कवि-जीवन को चेतना प्राप्त हुई ;गिरिजाकुमार माथुर का सहवास भी जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना है ।'

इनके वक्तव्य में 'शेखर जीवनी' का स्तवन मिलता है । उनके अनुसार शेखर की "वैयक्तिकता कविता-क्षेत्र में 'चिन्ता' के बाद 'तार सप्तक' के नये विचार, नई प्रेरणा और नई अनुभूति लेकर हिन्दी में

आई। 'तार सप्तक' का व्यक्तिवाद वस्तुतः शेखर की वैयक्तिकता का काव्यात्मक रूप था।"

आगे इस नये साहित्यिक स्परूप के लिये आप कहते हैं कि "वह अपनी वैयक्तिकता को इतना विशाल बनाये कि समाज की सारी आवश्यकतायें उसमें आ समायें और उसकी वाणी समाज के उस वर्ग की गीतिका बन सके जो सच्चा समाज है।"

आपकी तीन मान्यतायें हैं :—

१—कविता के प्रतीक यथासाध्य जीवन के सान्निध्य से लिये जाने चाहिए। प्रकृति स्वयं सौन्दर्य की प्रतिमा है।

२—भाषा, जीवन और समाज का एक प्रबल अस्त्र है किन्तु उसे जीवन से अलग होकर नहीं, जीवन में ही रहना है।

३—पुरानी मान्यताओं, पुराने शब्दों, पुरानी कहावतों को नये अर्थ से विभूषित करके कविता में प्रयोग करने से पाठक की अनुभूतियों को छूने में सहायता मिलती है।

कवितायें —

'एक भावना' में कवि-मन के इस विश्वास का चित्रण है कि—

जल रही प्राचीनतायें बाँध छाती पर मरण
का एक क्षण।
इस अँधेरे की पुरानी ओढ़नी को बेध कर
आ रही ऊपर नये युग की किरण।

'मुक्ति के आभास' में भी उसी विश्वास के स्वर हैं और 'नया रव' 'नव-सृजन', 'नया विश्वास' तथा 'नया आकाश' का कवि अभिनन्दन करता है। सब कुछ नया-नूतन अवश्य है किन्तु उस नूतन का क्या स्पष्ट एवं विकसित रूप है यह नहीं बतलाया गया है।

'नेहरू जी के प्रति' साधारण रचना है। 'उठे बादल झुके बादल' तथा 'वर्षा के बाद' सरस कवितायें हैं। 'उठे बादल झुके बादल' में

ग्राम के झुरमुट और पनघट के साथ कवि की दृष्टि उन किशोरियों पर भी पड़ी है जो—

खड़ी हैं सिर लिये गागर
तुम्हारी इन्तजारी में
दरद करती कमर, दिल काँपता है
बेकरारी में।

'वर्षा के बाद' की कुछ पंक्तियाँ हैं :—

फट गया गगन में नील मेघ
पय की गगरी ज्यों फूट गई
बौछार ज्योति की बरस गई
झर गयी बेल से किरन जुही
मधुमयी चाँदनी फैल गई
किरनों के सागर बिखर गये।

इन पंक्तियों में अलङ्कारों के सरस उपयोग के साथ संगीत और ध्वनि का सौन्दर्य भी है। 'ज्योति की बौछार' और 'किरणों के सागर' आदि सफल नूतन प्रयोग हैं। यह कविता छायावाद के रेशमी चित्रणों की याद दिला देती है किन्तु किसी भी गोपनीयता से मुक्त होने के कारण छायावादी रचना से अधिक प्रभावित करती है।

''नशीला चाँद' भी इसी कोटि में आती है, शब्दों के चयन में स्वाभाविक लालित्य है। जैसे—

तुम्हारे साथ हम भी लूट लें ये रूप के गजरे,
किरण के फूल से गूँथे यहाँ पर आज जो बिखरे,
इन्ही में आज धरती का सरल मन खिलखिलाता है,
नशीला चाँद आता है।

+ + +

सुनो कोई हमारी बात को गर सुनाता है,
मिलाकर गीत की कड़ियाँ हमारे मन मिलाता है
नशीला चाँद आता है।

और कविता पढ़कर चाँद का नशीलापन हम पर भी छा जाता है। कविता छोटी है, भावुकता से भीगी है और वैयक्तिकता से घिरी भी, फिर भी सुन्दर है, सरस है।

'एक मित्र से' लम्बी कविता है।

कवि अपने इस मित्र के सहारे और सहयोग से नवीनता तथा नूतनता की सृष्टि करना चाहता है :—

किन्तु आओ इस पुरानी बात से हम भी
नया आदर्श पायें+++
मित्र, आओ अब नया आलोक दें इस दीप को।

मित्र का साथ भी कवि के लिये नवलता का प्रतीक है—

सोचता हूं तुम सजीवन
चेतनामय प्राण से सींची हुई
नव रम्यता के पल्लवों के भार से झुकती हुई
नव वल्लरी हो।

और उसके साथ—संसार के दु:ख-दर्द को धोकर अपनी 'मित्रता के दीप को एक अभिनव ज्योति—किरनों से सँजो देने' की कवि ने बारबार आकांक्षा प्रकट की है। छायावादी कवियों की अज्ञात प्रियतमा यहाँ 'मित्र' के रूप में प्रस्तुत है और उसके नये मधुर साहचर्य से कवि का नये स्वप्नों की सृष्टि करना, हमारे मन को भी भाता है। कविता में नई-नई अभिव्यंजनायें हैं और अधिक प्रभावित न कर पाने पर भी, वे बोझ नहीं बनी हैं।

'शरणार्थी' शरणार्थियों से सम्बन्धित कविता है। उसकी कुछ पंक्तियों ध्यान आकर्षित करती हैं, जहाँ शरणार्थी से कहलाया गया है :—

ओ दया के दूत हम को दो फकत दो—
चार गेंती औ कुदाली
हम हमारी इस नयी, माँ के धरा के वक्ष में से
खोद कच्ची धातु अपने श्रेय के सिक्के बनालें।

इस नये आकाश, जल औ' वायु के आधार पर
फिर से सृजन के बीज डालें।

शिशिरान्त में फिर 'विश्वास' और इन्सानियत की ज्योति का आह्वान है। एक अत्यन्त कमनीय चित्र भी है—

पुष्प-ग्रीवा में नवोदित सूर्य की सुन्दर किरण ने
डाल दी है बाँह अपनी
दूर के भटके हुए दो प्राण-तन
आज फिर से मिल रहे हँस-हँस गले।

सब मिलाकर व्यास जी की रचनायें पठनीय हैं। वक्तव्य में कही अपनी काव्य-विषयक मान्यताओं का उनकी रचनाओं में सुन्दर निर्वाह मिलता है। छायावादी प्रकृतोपासना इनके काव्य में नवीन अभिव्यंजनाओं से अधिक सजीली हो आई। ये कवितायें आनन्द के रस के कुछ क्षणों की सृष्टि अवश्व करतो हैं और हृदयग्राही न होने भर भी काफी प्रभावित करती हैं। भाषा में प्रवाहमयी है परिमार्जित है और प्राकृतिक चित्रणों के समय मन को मोहित कर लेने वाली है। नई जिन्दगी के स्वप्न कवि ने बार-बार देखे और दिखाये हैं किन्तु इस नवीनता का कोई रूप स्पष्ट बनाकर सामने नहीं रक्खा। कहा जा सकता है कि इनकी रचनाओं में प्रयोगवादियों के गुण सन्तोषप्रद मात्रा में हैं और अवगुण नहीं के बराबर।

यह सब तो ठीक है किन्तु वक्तव्य में आपने 'शेखर जीवनी' को अनावश्यक महत्व व्यर्थ में दिया है। शेखर की वैयक्तिकता सप्तक के काव्यात्मक व्यक्तिवाद का आधार है—यह कहना ठीक नहीं है। और भी बहुत सी बातें व्यास जी ने नयी कविता एवं 'तार सप्तक' के विषय में कहीं हैं उन पर यथास्थान विचार किया है।

व्यास जी ने अपने वक्तव्य में कहा है—'हिन्दी में तो व्यक्तिवादी सहित्य का सूत्रपात ब्रिटिश साम्राज्यवाद का ही प्रसाद है। इसके पूर्व हिन्दी साहित्य चाटुकारिता के रूप में था।

'हिन्दी साहित्य चाटुकारिकता के रूप में था' से स्पष्ट नहीं होता

कि उनका तातपर्य्य वीरगाथाकाल, भक्तिकाल, और रीतिकाल के सम्पूर्ण साहित्य से है अथवा केवल रीति काल से। रीतिकाल का साहित्य भी केवल चाटुकारिता का रूप नहीं कहा जा सकता। हिन्दी साहित्य के लिए यह लेखक के क्षुद्र दृष्टिकोण का परिचायक है। कवि का यह वाक्य आश्चर्यचकित कर देता है कि हिन्दी का कवि ऐसा कहने की गलती कर सकता है। हिन्दी साहित्य के सूर, तुलसी, विद्यापति, कबीर, बिहारी, भूषण, रसखान, घनानन्द आदि अनेक विभूतियाँ संसार-साहित्य की विभूतियों से टक्कर लेने की क्षमता रखती हैं। हम यह दावा नहीं करते कि हिन्दी साहित्य भारतीय भाषाओं के साहित्य में सबसे अधिक सम्पूर्ण है पर यह निवेदन अवश्य है कि हिन्दी साहित्य भी पर्याप्त प्रौढ़ साहित्य है। उसके प्रति किसी के इस प्रकार के कथन पर दया ही आती है।

आज प्रचार के युग में हिन्दी लेखकों और विचारकों के ऐसे कथन को ही अन्य भाषाओं के साहित्यिक पकड़कर हिन्दी साहित्य के प्रति अनादर का भाव प्रदर्शित करते हैं।

———

शमशेरबहादुरसिंह

'दूसरा सप्तक' के चौथे कवि हैं श्री शमशेर बहादुर सिंह। आप समय समय पर हिन्दी अंग्रेजी उर्दू आदि के अनेक कवियों एवं विचारकों तथा उनकी कृतियों से प्रभावित होते रहे हैं। आर्ट और पेंटिग भी सीखी है। अंग्रेजी में भी कवितायें लिखते हैं।

आपकी भावनाओं पर सबसे गहरा असर पड़ा है 'परिमल' और 'अनामिका' का। 'पन्त' ने ही इन्हें 'पहले-पहल कविता की भाषा दी।'

"उर्दू गजलियत और उलझे हुए भावों को लिये हुए सपनों की सी चित्रकारी और कुछ चलती हुई लयों और इधर आकर बातचीत के लहजों और उसके उतार-चढ़ाव को भी कवि ने अपनी कविता के रूप और छन्द का आधार बनाना चाहा है।"

कविता का जो रूप आपने अपनाया है उसके सम्बन्ध में आप निम्न बातों की ओर ध्यान दिलाते हैं :—

१. सच्चाई का अपना खास रूप

२. ललित कलायें काफी एक दूसरे में समोई हुई हैं। "तस्वीर, इमारत, मूर्ति, नाच, गाना और कविता के ढङ्ग ऊपरी तौर से जितने अलग लगते हैं उतने है नहीं।"

३. कवि की ज़ाती दिलचस्पियों का उसकी कला से सम्बन्ध रहता है।

४. दूसरी भाषाओं का ज्ञान बहुत काम का है।

५. भाषा और कला के रूपों का कोई पार नहीं है।

आपके शब्दों में "इसका सीधा सादा मतलब हुआ अपने चारों तरफ की जिन्दगी में दिलचस्पी लेना, उसको ठीक ठीक यानी वैज्ञानिक आधार पर समझना (मेरे नजदीक यह वैज्ञानिक आधार मार्क्सवाद है) और अनुभूति और अपने अनुभव को इसी समझ और जानकारी से सुलझाकर स्पष्ट करके, पुष्ट करके अपनी कला-भावना को जगाना।

इस तरह अपनी कला-चेतना को जगाना और उसकी मदद से जीवन की सच्चाई और सौन्दर्य को अपनी कला में सजीव रूप देते जाना इसी को में साधना समझता हूं। और इसी में कलाकार का संघर्ष छिपा हुआ देखता हूं।"

पहली कविता है 'बात बोलेगी।' कवि ने कुछ बहुत बड़ी बात कहने का प्रयास किया है किन्तु वास्तव में जो कहा जा सका है वह बड़ा न बन सका है—

सत्य का मुख
भूठ की आँखें
क्या—देखें !
सत्य का रुख
समय का रुख है।

इन पंक्तियों में निहित तथ्य सत्य अवश्य है किन्तु फिर भी जिस रूप में प्रस्तुत किया गया है उस रूप में न छू पाता है, न प्रभावित करता है।

आगे देखिये :—

दैन्य दानव क्रूर स्थिति।
कंगाल बुद्धि। मजूर घर भर
एक जनता का अमर वर
एकता का स्वर।
—अन्यथा स्वातन्त्र्य इति।

इन पंक्तियों में स्थिति का आभास मिलता है। पहेली बूझने की उत्सुकता एवं आनन्द ही पाठक के पल्ले पड़ता है कुछ मार्मिक तथ्य की अनुभूति नहीं।'

'घिर गया है समय का रथ' कुछ सुन्दर चित्र प्रस्तुत करता है।

घेरने को दुर्ग की दीवार मानों—
अचल विन्ध्या पर
कुण्डली खोली सिहरती चाँदनी ने
पंचमी की रात।
घूमता उतर दिशा को सघन पथ
संकेत में कुछ कह गया।

'सिहरती चाँदनी के कुण्डलो खोलने' की इस कल्पना में नवीनता है और है कवि की कल्पना-शक्ति का सन्दर परिचय। ऐसी अछूती

कल्पनायें और अभिव्यंजनायें काव्य-जगत् की श्रीवृद्धि करने वाली हैं।

'घिरते आकाश को' चार पंक्तियों की छोटी सी, और फिर भी साधारण ही कविता है। गीत रचने का सफल प्रयत्न है।

"मै सुहाग दूँ"
'विकल मुकुल तुम,
प्राणमयि
यौवनमयि
चिर वसन्त स्वप्नमयि
मै सुहाग दूँ।
विरह-आग से तुम्हें
मैं सुहाग दूँ।

इन पंक्तियों पर निराला जी की छाप स्पष्ट है और कवि की ऐसी रचनायें प्राणों में उतनी सशक्त न हों, किन्तु उनका अंग-सौष्ठव (शब्द व ध्वनि-योजना) सुन्दर बन पड़ी है। 'एक मुद्रा से' भी इसी कोटि की रचना है।

'शरीर स्वप्न' प्रयोगवादी रचना है इस अर्थ में कि लगता है कि कवि कुछ बहुत नवीन, गम्भीर बात कहना चाहता है। किन्तु पाठक के पल्ले केवल एक स्वप्निल अस्पष्टता ही पड़ती है। ऐसी अस्पष्ट रचनायें कवि की अनुभूतिमयता का दावा रखने पर भी अपनी दुरूहता के कारण स्पर्श नहीं कर पातीं।

'हे बसन्तवती' और 'बाले दीप' "मै सुहाग दूँ" जैसी ही सुन्दर रचनायें हैं। "अकेले किस के प्राण" में कवि कहता है—

'आज अकेले किस के प्राण ?
मेरे कवि के ! मेरे कवि के !
जिसने जीवन के सम्मान
फूँक दिये आँगन में छवि के !

कवि के अकेले प्राणों और उनकी जिस विशेषता को कवि ने प्रकट किया है वह मर्मस्पर्शी है।

कवि ने शेर तथा रुबाई भी प्रस्तुत की हैं, जिनमें कुछ उल्लेखनीय नहीं है, हाँ वे अभिव्यक्ति के क्षेत्र में किए गये नूतन प्रयोग कहे जा सकते हैं।

'हे अगोरती विभा', 'हार हार समझा मै', 'हास बन' आदि कलेवर की दृष्टि से सुन्दर हैं।

इनके अतिरिक्त 'स्वतन्त्रता-दिवस पर 'भारती की आरती', 'समय साम्यवादी' आदि कविवायें एक ही कोटि की हैं। 'भारत की आरती' की पंक्तियाँ हैं—

साम्राज्य पूँजी का क्षत होवे
ऊँच नीच का विधान नत होवें
साधिकार जनता उन्नत होवे
जो समाजवाद जय पुकारती।

इन पंक्तियों की विशेषता यदि कुछ है तो केवल उनका नारावाद, अन्यथा न इनमें अनुभूति का बल है न अभिव्यक्ति का सौन्दर्य। ऐसी रचनाओं के प्रयेक शब्द से सहमत होने पर भी उनका याद रहना कठिन है।

शमशेर जी की रचनायें उनके वक्तव्य से दूर हैं। वक्तव्य में वे जितने स्पष्ट हैं रचनाओं में उतने ही उलझे और अस्पष्ट। वास्तव में वे आकारवादी हैं। रूप-विधान में वे इतने व्यस्त हो उठे हैं कि यही उनकी कला-साधना रह गई है, किन्तु कलेवर कितना ही पुष्ट और सुन्दर क्यों न हो, यदि उसमें प्राण-प्रतिष्ठा न की जाय तो उसका मूल्य कागज के फूलों से अधिक न होगा।

शमशेर जी में बहुत कुछ कहने का प्रयास अवश्य है किन्तु वह कुछ छन्द, ताल, लय आदि के नवीन प्रयोगों में उलझ कर रह जाता है गहराई को नहीं छू पाता।

सजाने के, सँवारने के प्रति वे इतने सजग हैं कि यह भूल बैठे हैं

कि सौन्दर्य-प्रसाधन सौन्दर्य को बढ़ा सकते हैं, उसकी सृष्टि नहीं कर सकते।

आप में कला की समझ है और कला का सृजन करने की सामर्थ्य भी; और यदि आप विषय-वस्तु के प्रति भी उतने ही सजग और सावधान हो सकें जितने वे अपने कलागत प्रयोगों के सम्बन्ध में हैं तो उनकी साधना वास्तव में सम्पूर्ण कहला सकेगी।

नरेश कुमार मेहता

कवि का वक्तव्य--

श्री नरेश कुमार मेहता पाँचवें कवि हैं। आपको जीवन में काफी कड़वाहट मिली है। फिर भी आपका विश्वास है कि 'नरेश है और अभी आगे रहने को है।'

आपके अनुसार आज हिन्दी साहित्यकारों में प्रयोगवादियों को छोड़ कर कोई भी प्रतिभा ऐसी नहीं है जो युग को मोड़ पा रही हो।

आप संस्कृति को भ्रामक शब्द मानते हैं फिर भी कहते हैं कि 'संस्कृति की शोध तो की ही जा सकती है और हम मनुष्य के आदि-काल के काव्य से भावों की विराटता ग्रहण करके सुन्दर कल्पना-प्रधान साहित्य रच सकते हैं।" उनके अनुसार उनकी 'उबस' इसी प्रकार के 'प्रयोगों के उदाहरण स्वरूप हैं।

किसी प्रकार के प्रभाव से लिखी गई कविता को आपके अनुसार द्वितीय श्रेणी का काव्य कहना चाहिये और ये 'द्वितीय वाली बात' अथवा पसन्द नहीं है। अतः वे अपनी पिछली छायावादी एवं रहस्य-वादी कविताओं को कविता नहीं मानते।

अन्त में आपके अनुसार "विगत अनुकरणीय नहीं हो सकता। हाँ

शोभालंकार बन कर रह सकता है। नया तो मेरा युग है, मेरी प्रकृति है, तथा सबसे नया मैं हूँ।

कवितायें—

'चाहता मन' कवि-मन की एक मीठी सी चाह को प्रतिध्वनित करती है। कविता में छायावादी भावुकता और तरलता है और साथ ही प्रयोगवादियों का वास्तविक जीवन-सान्निध्य भी। एक ओर जहाँ कवि 'शरद् दुपहर के कपोलों पर उड़ी वह धूप का तट को निहारता है तो दूसरी ओर उसे 'धोबियों की हाँक' भी सुनाई देती है।

प्रिया की स्निग्ध बाहों के लिये 'चिकने' चीड़ की उपमा देना सुन्दर लगता है। मृणाल-भुजायें यदि अपने उपमानों का क्षेत्र इसी भाँति की नवीन उपमाओं में खोजती हैं तो कल्पना को एक ताजगी मिलती है। ऐसी नवीनता का स्वागत है।

आगे पंक्तियाँ हैं :—

'कौन जाने श्रूय उस दिन की कहाँ है,
जो तुम्हारे कुन्तलों में गरम, फूली, धुली, धौली लग रही थी।

यहाँ 'फूली, धुली, धौली शब्दों का प्रयोग कितना स्वाभाविक और सुन्दर बन पड़ा है।

एक नितान्त व्यक्तिगत अनुभूति से सिक्त यह कविता अलंकारों के सहज उपयोग और जीवन के स्पर्श के कारण अत्यन्त सुन्दर बन पड़ी है। कविता अतुकान्त छन्द में है, न कहीं प्रवाह लाने का प्रयत्न है न उसे मोड़ने-तोड़ने का। इस कविता की विशेषता उसकी सहजता कही जा सकती है ऐसी सहजता जो सहज है किन्तु प्रभावहीन नहीं (जैसा प्रायः हो जाने की सम्भावना रहती है।)

'अहं' कविता अहं की परिभाषा उसकी विशेषता और वातावरण को चित्रित करती हैं और प्रयोगवादियों के अहं के समान ही बहुत के भीतर खोखलापन ही लिये है। ऐसी रचनायें जैसे बहुत कुछ 'Create' करने का प्रयास करती हैं किन्तु जो हो पाता है वह है केवल उन्हें छोड़कर कुछ और पढ़ने की पाठक की चेष्टा।

'किरण-धेनुएँ' प्रातःकाल का सुन्दर रूपक है।

इसके बाद 'उषस्' शीर्षक चार कवितायें हैं जिनमें उषा रानी के चिर नवीन, चिर मृदुल सौंदर्य का चित्रण है। उसके सम्वन्ध में कवि ने अपने वक्तव्य में स्वयं कहा है कि "हम मनुष्य के आदि काल के काव्य से भावों की विराटता ग्रहण करके सुन्दर कल्पना प्रधान साहित्य रच सकते हैं। इस प्रकार के प्रयोगों के उदाहरण रूप में मेरी 'उषस्' है।" वैदिक काल की प्रकृति-उपासना यहाँ आधुनिक रूप में प्रस्तुत है और हजारों वर्ष पूर्व गूँजे स्वरों की प्रतिध्वनि होने पर भी इनमें अपना कहे जाने योग्य भी बहुत कुछ है। 'नीलम वंशी' में गूँजते 'कुंकुम के स्वरों' के साथ जब कवि कह उठता है—

भिनसारे में चक्की के सँग
फैल रहीं गीतों की किरनें,
पास हृदय-छाया लेटी है,
देख रही मोती के सपने,
गीत न टूटे जीवन का यह कंगन बोल रहे !

तो इन पंक्तियों की विशेषता स्पष्ट हो उठती है उषा के मनोरम सौंदर्य अभिनन्दन के साथ चक्की चला रहे कंगन के स्वरों को गूँथ देना कवि की मौलिक प्रतिभा शक्ति को सिद्ध कर देता है 'आदि काव्य से भावों की विराटता ग्रहण कर कवि ने अपनी धरती के स्वप्न ही मुखर किये हैं और उसकी पुकार है कि मानव जीवन स्वस्थ बने।

'जन गरवा चरैवेति' में 'चलते चलो चलते चलो' का सन्देश है और 'उषस् : अश्व की वल्गा' में फिर प्रकृति और जीवन का गठबन्धन है। कितनी सुन्दर और मर्मभरी पंक्तियाँ हैं—

पुष्ट चिट्टे वृषभों को देख,
लगेगा दिन बन आया बैल।
चीर भूमा का उर आधार,
उगे सीता में जीवन बेल,

पुष्पवती पृथ्वी को देना धाम, हँसे अंचल के चावल फूल !

'समय देवता' चार सौ पंक्तियों की बृहदाकार कविता है जिसके सम्बन्ध में कवि का कथन है कि इसमें 'जीवन के शास्त्र से सब चीजों का वर्णन किया हुआ मिलेगा।'

यह कविता समस्त विश्व का काव्यात्मक भौगोलिक परिचय—जिसमें स्थान स्थान पर राजनैतिक घटनाओं का भी अंकन है—कही जा सकती है। प्रत्येक पंक्ति अलंकारों से जगमग है फिर भी कविता के लक्ष्य से दूर जा पड़े शर सी ही सिद्ध होती है। मानव-संस्कृति के शोध का यह प्रयत्न असंगत होकर रह जाता है और सबसे खटकने वाली बात तो यह है कि कवि को 'लेनिन की हुँकार' का अभिनन्दन करने का अवसर तो मिला और इसके अतिरिक्त अन्य देशों की विशेषताओं के दर्शन भी हुए किन्तु उनकी अपनी शस्य-श्यामला जन्मभूमि में उन्हें केवल 'फसल जल रही, मनुज मर रहा ही' दिखलाई पड़ा। आज के भारत ने यदि शरणार्थियों का अभिशाप झेला है तो युग-पुरुष गांधी भी तो इसी आज के भारत के ही वरदान हैं जिनकी स्निग्ध वाणी 'लेनिन की हुँकार' से कम शक्तिशाली नहीं। विश्व के इतिहास ने जिसका एक स्वर से अभिनन्दन किया है उन गांधी को उन्हीं के देश का होकर कवि कैसे भूल गया ? समस्त विश्व को अपना कहना इस प्रवृत्ति का अभिनन्दन है स्वागत है, किन्तु जो अपना है उसकी उपेक्षा भी तो उचित नहीं !

'समय देवता' इस संग्रह की भी सबसे विशाल कविता है किन्तु केवल विशालता ही तो श्रेष्ठता की कसौटी नहीं है। अलंकारों से सुगठित यह कविता कवि की व्यंजना शक्ति को सिद्ध कर देती है किंतु अनुभूति के मर्म तक न पहुँच सकने के कारण बिखर कर रह जाती है।

नरेश मेहता की सबसे बड़ी विशेषता है, उनकी चमत्कार उत्पन्न करने की शक्ति और अलंकार-योजना। इन दोनों में ही कवि सफल है और अलंकारों के उपकरण वास्तविक जीवन से लेने के कारण

छायावादी कवियों से अधिक प्रभावित करता है। कवि में छायावादियों का सौन्दर्य-चिन्तन अधिक सहज और खुले रूप में मिलता है। कवि की भावुकता जहाँ उसे सौन्दर्य की वन्दना सिखाती है वहाँ जीवन के गीतों का अभिनन्दन भी। वह प्रकृति का पुजारी है और जीवन के प्रति सजग भी। नूतनता को उसने अपने साँचे में ढाला है उसका अन्धानुकरण नहीं किया।

'उषस्' शीर्षक कवितायें आदि काव्य से प्रभावित होने पर भी कवि की मौलिक प्रतिभा की छाप लिये हैं।

कहा जा सकता है कि कवि में अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों हैं, हाँ, अनुभूति का पलड़ा ही कुछ नीचा है। यदि कवि जीवन के समीपतर आ सके और जितनी सावधानी अलंकार-योजना आदि में रखता है, उतनी अनुभूति-पक्ष में भी रखे तो उसकी कृतियाँ श्रेष्ठ कोटि की अधिकारिणी होंगी।

फिर भी सप्तक के कवियों में नरेश जी की अपनी विशिष्टता है और उनकी कवितायें जैसे स्वप्न और जागृति का धूप-धाँही चित्रण हैं।

श्री रघुवीर सहाय

कवि का वक्तव्य—

श्री रघुवीर सहाय छठे कवि हैं। संग्रह की कवितायें कवि की १९४७ से १९४९ तक की रचनाओं में से हैं। १९४७ में एक बार बच्चन की कवितायें पढ़ीं और उनकी वेदना से कवि का 'कण्ठ फूटा'।

"पन्त" और "निराला" का अगर असर हुआ तो बहुत टेढ़े तरीके से।" हाँ 'अज्ञेय' तथा शमशेर बहादुर ने 'जिनकी बौद्धिक आत्मानुभूति और बोधगम्य दुरूहता किसी हद तक एक ही सा प्रभाव डालती हैं', कवि को 'काफी तैयार किया है।'

आपकी 'कोशिश तो यही रही है कि सामाजिक यथार्थ के प्रति अधिक से अधिक जागरूक रहा जाय और वैज्ञानिक तरीके से समाज

को समझा जाय ।' शमशेर का कथन "कि जिन्दगी में तीन चीजों की बड़ी जरूरत है : ग्राक्सीजन, मार्क्सवाद ग्रौर ग्रपनी वह शक्ल, जो हम जनता में देखते हैं" कवि को सदा याद रहेगा। "मगर मार्क्सवाद को कविता पर गिलाफ की तरह चढ़ाया नहीं जा सकता। उसके लिए मध्यवर्गीय, धोखा खाते रहने वाले ढुलमुलयकीन को ग्रपनी बौद्धिक चेतना को जागरूक रखना पड़ेगा ग्रौर बराबर जागरूक रह कर एक दृष्टिकोण बनाना होगा। यह दृष्टिकोण सामाजिक, वास्तविक, साम्यवादी ग्रौर इसीलिये सही ग्रौर स्वस्थ होगा तभी कविता में जान ग्रौर माने पैदा होंगे।" रघुवीर सहाय जी ने ग्रबतक "शैली में ताल ग्रौर गति के कुछ प्रयोग" किये हैं। "भाषा को भी साधारण बोल चाल की भाषा के निकट लाने की कोशिश रही है," "इस तरह की कोशिशें विचार वस्तु के दिल ग्रौर दिमाग में उतरने के तरीके पर निर्भर रहेंगी ग्रौर जरूरी है कि हम ग्रपनी ग्रनुभूति को उसी प्रकार सुधारें, ताकि कविता भी वैसी ही जानदार हो सके, जैसी कि वे वास्तविकतायें जिनसे हम कविता की प्रेरणा लेते हैं। विचारवस्तु का कविता में खून की तरह दौड़ते रहना कविता को जीवन ग्रौर शक्ति देता है; ग्रौर यह तभी सम्भव है जब हमारी कविता की जड़ें यथार्थ में हों।"

कवितायें—

'वसन्त' कविता वसन्त के वासन्ती रंगों को बिखेरती है :—

बन की रानी, हरियाली-सा भोला ग्रन्तर
सरसों के फूलों-सी जिसकी खिली जवानी
पकी फसल-सा गरुग्रा गदराया जिसका तन
ग्रपने प्रिय को ग्राता देख लजाती जाती।
गरम गुलाबी शरमाहट-सा हलका जाड़ा
स्निग्ध—गेहुँए गालों पर कानों तक चढ़ती—
लाली जैसा फैल रहा है।

वन की रानी के इस चित्र में स्वाभाविकता का ग्राकर्षण है।

हलके जाड़े को 'गरम गुलाबी शरमाहट' सा बताना और 'गेरुआ गदराया' जैसे लोक-शब्दों का प्रयोग सुनना अच्छा लगता है और इसके साथ जब कवि कहता है :—

तुहिन-विन्दु-सजलानुराग यह रँग-बिरंग सिन्दुर सुहाग
जन-पथ के तीर-तीर छिटके,
जन-जन के जीवन में ऐसे
मिल जाये जैसे नयी दुल्हन
से पहली बार सजन मिलते हैं......

तो जन-जन का स्पर्श पाकर चित्र में सजीवता आ जाती है। कविता सुन्दर है। बहुत परिष्कृत नहीं है फिर भी सहजता का अपना आकर्षण लिये है।

'पहला पानी' वसन्त से एक कदम और आगे है। 'फुनगी पर बैठी गौरैय्या, 'घाँघर समेटती' युवती और 'कच्ची मिट्टी की सुघर गेहुँई दीवारें' कवि की लेखनी का स्पर्श पाती हैं और मिट्टी में जीवन आशा के साथ कवि का विश्वास भी अँगड़ाई लेता है कि "जितनी बूँदें उतने जौ के दाने होंगे।' इस कविता का आकर्षण भी इसकी सादगी ही है। हाँ, यह यह सादगी प्रयास किये जाने पर और आकर्षक बन सकती थी।

"प्रभाती" में 'ज्योतिर्मय हो दिन का क्षण-क्षण' की गूँज है।

'याचना और गजल' में कवि के उस कथन की झलक मिलती है जिसके अनुसार 'बच्चन की वेदना से उनका कण्ठ फूटा था।' इन गीतों में के रोमांटिक स्वरों में वेदना का आभास है किन्तु वह तड़प और सामर्थ्य नहीं जो 'बच्चन' की विशेषतायें हैं।

'भला', 'संशय', 'कोशिश' आदि साधारण रचनायें हैं जो कवि के निकट अपनी विशिष्टता अवश्य रखती होंगी किन्तु दूसरे तक पहुँच कर साधारण ही रह जाती हैं।

'अनिश्चय' में अपने मन की दशा की अनुभूति हमें कराने कवि ने ढूँढ़-ढूँढ़कर उपमायें प्रस्तुत की हैं :—

जैसे रेलगाड़ी के निकल जाने पै तकवाहा किसान
खेत के तीर मड़ैया में तनिक घूम
एक क्षण नैचे की निगाली को बाये हुए मुँह से हटा
उसको देखता है ऐसे
मैंने देखा है उन्हें, धूप में बैठे-बैठे।

अथवा,

'बाग में धूप खाते खाते जैसे मैं गरमाकर
उठके छाया में बराम्दे की चला आया हूँ।'

ऐसे चित्रण नवीन और मौलिक अवश्य लगते हैं किन्तु एक के बाद एक प्रकट होकर अपनी अधिकता के कारण 'कलाबाजी' का वातावरण उत्पन्न कर देते हैं। ऐसे प्रयोग यदि कवि-अनुभूति को सजा सँवार दें तो काफी हैं; पर जहाँ ऐसी सजावट का आधिक्य हो जाता है वहाँ उसका असर भी कुछ उलझ कर रह जाता है।

'लापरवाही' कविता की प्रथम पंक्ति 'पथ ही अनेक हैं अथवा कुछ दिग्भ्रम-सा होता है' जैसे कवि की उसी उलझन को व्यक्त कर देती है जो उनकी कविताओं में मिलती है।

शेष कविताओं में भी उल्लेखनीय वही है जो पहले की कविताओं में है।

श्री सहाय की रचनाओं और उनके वक्तव्य में सामंजस्य नहीं के बराबर है। जिस दृष्टिकोण की कवि ने चर्चा की है, उसका दर्शन नहीं करा सका। उनका एक और विश्वास है कि वे 'शैली, ताल और गति के कुछ प्रयोग कर पाये हैं' किन्तु यह भी नहीं हो पाया है।

इनके पास कवि की दृष्टि तो है किन्तु वह पकड़ ढीली है जो अभिव्यक्ति और अनुभूति में सामंजस्य पैदा कर सार्थकता पा लेती है।

हाँ, इनकी कविताओं में सादगी का एक सौन्दर्य अवश्य है किन्तु वह भी पूर्ण रूप से मुखर नही। उलझन कीं एक हल्की सी जाली

कहीं-कहीं उस सौन्दर्य को और छिपा लेती है। कवि को जैसे दिग्भ्रम सा है जिसमें उलझकर वह अपनी कला को निखार नहीं पाता।

धर्मवीर भारती

कवि का वक्तव्य—

सातवें और अन्तिम कवि हैं श्री 'धर्मवीर भारती'। आपका जीवन-संघर्ष बहुत तीखा रहा है और अब भी है, पर उसने एक अजीब सी दृढ़ता और मस्ती दे दी है। हौसले पहाड़ों को उलट देने के हैं।

"सबसे प्रिय कवितायें वे हैं जो गटर में पड़े शराबियों, हथौड़ा चलाते लोहारों और धूल में खेलते हुए बच्चों की भोली आँखों में झलकती हैं, लेकिन जिन्हें न अभी किसी ने लिखा न किसी ने छापा।"

कवि को साहित्य के हर रूप में दिलचस्पी है पर वास्तव में उसका मन कविता में ही रमता है क्योंकि इसके माध्यम से ही वह "आज की बेहद पिसती हुई संघर्षपूर्ण, कटु और कीचड़ में बिलबिलाती हुई जिन्दगी के भी सुन्दरतम अर्थ खोज पाने में समर्थ रहा है। कविता ने उसे अत्यधिक पीड़ा के क्षणों में विश्वास और दृढ़ता दी है।"

'कविता, भारती के लिये शान्ति की छांया और विश्वास की आवाज रही है।'

'जब उसकी चेतना ने पंख पसारे तब छायावाद का बोलबाला था। उसे लगा कि कविता की शहजादी इन अपार्थिव कल्पनाओं, टेढे-मेढे शब्द-जालों, अस्पष्ट रूपकों और उलझे हुए जीवन-दर्शन की शिलाओं में उदास जलपरी की तरह कैद है और भारती को चाहिये कि वह उसे उन्मुक्त कर सर्वथा मानवीय धरातल पर उतार लावे ताकि वह ××× उनके सीधे-सादे सुख-दुःख, वासनाओं-कामनाओं को समझ सके, उन्हीं की बोली में बोल सके।'

'इसलिये भारती ने सबसे पहले लिखे सरलतम भाषा में रंग-बिरंगी चित्रात्मकता से समन्वित साहसपूर्ण उन्मुक्त रूपोपासना और उद्दाम यौवन के सर्वथा मांसल गीत जो न तो मन की प्यास को

झुठलाएँ न उसके प्रति कोई कुंठा प्रगट करें। जो सीधे ढंग से पूरी ताकत से अपनी बात आगे रखें। आदमी की सरल और सशक्त अनुभूतियों के साथ निडर खेल सकें, बोल सकें।'

'भारती को इस बात का ध्यान रहता है कि उसके चित्र आपस में उलझने न पावें और कुल मिलाकर अपनी बात को पूरे प्रभाव के साथ रखें। × × × क्योंकि भारती अकसर सोचा करता है कि कविता का मुख्य कार्य आज के युग में रूढ़ अर्थों में रसोद्रेक मात्र न रह कर प्रभाव डालना रह गया है।'

कवि स्वीकार करता है कि आज की नई परिस्थिति, नई सम्वेदनाओं और नवीन अनुभूतियों के लिये काव्य के पुराने साधन अपर्याप्त हैं लेकिन फिर भी भारती केवल 'परम्परा तोड़ने मात्र के लिये परम्परा नहीं तोड़ता और न प्रयोग मात्र के लिये परम्परा करता है। जब जिन्दगी, अनुभूति और विश्वास का तकाजा इतना तीखा हो जाता है कि वह बेचैन हो उठता है, तभी वह ऐसी कोई चीज लिखता है, और अगर उसे पता चलता है कि ऐसी चीज में 'हुँकार' नहीं है तो वह उसे फाड़कर फेंक देता है।'

'भाषा को भाव की पूर्ण अनुगामिनी होना चाहिये, बस। न तो पत्थर का ढोका बनकर कविता के गले में लटक जाय और न रेशम का जाल बनकर उसकी पाँखों में उलझ जाये।' राजनीति के सम्बन्ध में 'भारती वर्ग-संघर्ष के सिद्धान्त को अभी अंशतया ही स्वीकृत कर पाया है × × × भारती कविता में किसी भी विषय को उठाये बिना नहीं रह पाता बशर्ते वह जीवन और अनुभूति की आन्तरिक लय से मेल खाता हो।'

'लेकिन ऊपर से कुछ भी थोपना-लादना भारती प्रतिभा की पराजय मानता है और साहित्य की राजनीतिक गुलामी को तो सरासर फासिज्म। दलगत राजनीति और अवसरवादी कलाबाजियों को भारती बाजारूपन समझता है और हिकारत की निगाह से देखता है।'

और अन्त में 'भारती कवितायें कम लिखता है, लेकिन जब लिखता है तब अपने रुचि और अपने ईमान की।'

कवितायें—

'थके हुए कलाकार से' में कवि ने थके कलाकार को नये विश्वास, नये साहस का सन्देश दिया है क्योंकि—

अभी तो पड़ी है धरा अधबनी
अधूरी धरा पर नहीं है कहीं
अभी स्वर्ग की नींव का भी पता !

और फिर—

प्रलय से निराशा तुझे होगई
सिसकती हुई साँस की जालियों में,
सबल प्राण की अर्चना खोगई
थके बाहुओं में, अधूरी प्रलय
औ, अधूरी सृजन-योजना खो गई
प्रलय से निराशा तुझे हो गई
इसी ध्वंस में मूर्च्छिता हो कहीं
पड़ी हो, नयी जिन्दगी; क्या पता ?
सृजन की थकन भूल जा देवता !

'मूर्च्छिता जिन्दगी' ने कवि को व्यथित अवश्य किया है किन्तु उसके स्वरों को शक्ति भी दी है। आज के इस घोर संघर्षमय वातावरण में ऐसी कवितायें उन अमूल्य क्षणों का सृजन कर सकती है जिनमें प्राणों को मुग्ध करने का ही नहीं, उनमें नवीन रक्तसंचार का बल है। कविता में तड़प के स्वर जितने मार्मिक हैं प्रेरणा के स्वर फिर उतने ही सशक्त भी।

'सृजन की थकन भूल जा देवता' न केवल कवि की प्रस्तुत रचनाओं में ही सर्वश्रेष्ठ है कदाचित् इस संग्रह की श्रेष्ठतम रचना भी है।

'कवि और कल्पना' में 'गुलाम बन्दिनी निराशिनी' कल्पना को

कवि ने 'नवीन स्वर' का सन्देश दिया है। उससे एक ओर 'विनाश' से न डरने की प्रार्थना है नो 'विकास' को भी निर्भय स्वीकार करने का सन्देश है—

विनाश से डरो नहीं,
विकास से डरो नहीं;
सृष्टि के लिये बनो प्रथम विनाश स्वामिनी !
कल्पने विलासिनी !

आज के इस उलझनभरे कठिन युग में कल्पना 'यक्ष के प्रणय-सन्देश' के गीत तो गा न सकेगी किन्तु स्वतन्त्र क्रान्ति की ज्वाला को गले लगाकर नये युग का सृजन तो कर सकती है। आज तो उसका उत्तरदायित्व और भी अधिक है। अब उसे केवल मधुर स्वरों की सृष्टि ही नहीं करनी है वरन् समय की चुनौती को मुँहतोड़ उत्तर भी देना है। अब 'कल्पना' केवल 'विलासिनी' ही बनी नहीं रह सकती, कवि को बेड़ियाँ झंझोड़कर नवीन राष्ट्र की 'कल्पना सँवारने' में अपना योग भी देना है। कवि की कल्पना क्या करती रही है और अब क्या करे, दोनों पक्षों को कवि ने प्रस्तुत किया है वह भी इतने सहज, साथ ही मार्मिक रूप में कि हृदय मुग्ध हो जाता है।

इसके बाद हैं कवि के 'गुनाह के दो गीत' और 'तुम्हारे पाँव मेरी गोद में' तथा 'उदास तम' शीर्षक कवितायें।

जैसा कि कवि ने अपने वक्तव्य में लिखा है कि 'छायावाद की अपार्थिव कल्पनाओं और उलझे जीवन-दर्शन' से ऊबकर उसने 'रंग-बिरङ्गी चित्रात्मकता से पूर्ण उन्मुक्त रूपोपासना और उद्दाम यौवन के सर्वथा मांसल गीत लिखे'···और चारों कवितायें कवि के उक्त कथन को अक्षरशः चरितार्थ कर देती हैं। कवि ने ठीक ही कहा है, उसकी ये रचनायें उन्मुक्त रूपोपासना और उद्दाम यौवन के मांसल गीत ही हैं। रंग-बिरंगी चित्रात्मकता के इन्द्रधनुष से सुसिज्जत प्रत्येक पंक्ति में एक अदा है, एक नाजुक खूबी है जो उर्दू शायरी से प्रभावित होने पर कवि की सशक्त लेखनी के कारण उसकी (कवि की) छाप

लिये है। छायावादी कवियों की भाँति अस्पष्ट और सहमे ढंग से नहीं, खुलकर और पूरे जोर से कवि ने कहा है—

"किसी की गोद में सर धर
घटा घनघोर बिखरा कर
अगर विश्वास सो जाये
धड़कते वक्ष पर मेरा अगर व्यक्तित्व खो जाये
न हो यह वासना
तो ज़िन्दगी की माप कैसे हो ?
किसी के रूप का सम्मान मुझको पाप कैसे हो...
अगर मैंने किसी के होठ के पाटल कभी चूमे,
महज़ इससे किसी का प्यार मुझ पर पाप कैसे हो...

और लगता है कि कदाचित् छायावाद की प्रतिक्रिया कवि को बहुत हिला गई है तभी तो जैसे कुढ़कर उसने छायावादी गोपनीयता को एकदम अनावृत कर दिया है। उसके अनुसार—

मुझे तो वासना का विष हमेशा बन गया अमृत
बशर्ते वासना भी हो तुम्हारे रूप से आबाद

और :

बड़ा मासूम होता है गुनाहों का समर्पन भी
हमेशा आदमी मजबूर होकर लौट आता है
जहाँ हर मुक्ति के, हर त्याग के हर साधना के बाद।

इन पंक्तियों में जो कुछ कहा और दोहराया गया है वह तथ्य अवश्य है किन्तु सत्य कदाचित् नहीं। वासना के रेशमी तूफान ने सदैव मधुर आत्मसमर्पण करवाया है, और यदि वह प्रणय का, प्रेम का विश्वास लिये है तो फिर उसके पाप या अनुचित होने का प्रश्न ही नहीं उठता। किन्तु अनियंत्रित वासना की आँधी चाहे कितनी भी रङ्गीन और 'मासूम' क्यों न हो, अनुचित या 'पाप' ही कहलायेगी; और उसकी यह कवित्वमय वकालत भी छलकती अंगूरी की वह घूँट है जो एकबार हमें बादलों के महलों में भले ही पहुँचा दे, किन्तु नसों

में जहर सी, बूँदें भी घोल देती है। ये 'गुनाह' आदिम भी हैं और इन्द्रधनुषी भी किंतु हैं शरीर की ही क्षणिक भूख, आत्मा की वह चिरन्तन प्यास नहीं जो धरती के बूंद-बूंद मानव को स्वर्ग तक खींच ले जाती है।

जहाँ तक 'उन्मुक्त रूपोपासना' का प्रश्न है कवि ने बड़ी मधुर, बड़ी भोली और भावुक उपासना की है। प्रिया का 'कली सा तन किरन सा मन, नरगिसों के पात सी चितवन' और 'शरद की धूप जैसा तन' हमें भी मोह लेता है। मांसल रूप और सौन्दर्य भी कविता के चिरन्तन आधार रहे हैं और रहेंगे। और उनके गीत भी यदि नये स्वरों में गाये जाये तो गाएँगे भी अवश्य। फिर यहाँ तो कवि के प्रस्तुत चित्रों में छायावादी स्वप्निलता और कल्पनाशीलता को धरती पर उतार दिया गया है। अस्थि-मज्जा से निर्मिति कमनीय गात के अभिनन्दन में जैसे कवि ने स्वयं को लुटा दिया है और उसकी तन्मयता हमें भी छू लेती है। प्रिया के चरण-युगल की कवि ने अनूठी अभ्यर्थना की है—

चुम्बनों की पाँखुरी के दो जवान गुलाब मेरी गोद में
+ + + +
दो बड़े मासूम बादल देवताओं से लगाते दाँव मेरी गोद में
+ + + +
ये खंडहरों में सिसकते, स्वर्ग के दो गान मेरी गोद में

और फिर जब कवि कहता है कि ये पाँव प्यार नहीं, आराधना के लिये हैं—

ये चरण मुझको न दें
अपनी दिशायें भूलने—

तो 'उन्मुक्त रूपोपासना' के स्वर में गहराई आ जाती है, 'उन्मुक्त रूपोपासना और उद्दाम यौवन के ये मांसल गीत' अपनी विशेषता लिये हैं और यदि प्रभाव डालना ही कविता की कसौटी हो तो प्रभाव

भी खूब डालते हैं। किन्तु यह प्रभाव हृदय को मुग्ध कर सकता है, प्राणों का संगीत नहीं बन सकता।

'उदास तुम' उदास प्रिया का चित्र भारती की उसी तूलिका की चित्रात्मकता लिये है, जो निश्चय ही 'तारों से रोशनी और फूलों से रंग' चुरा कर बात-बात पर चित्र बनाती चलती है—

खारे आँसू से धुले गाल,
रूखे हलके अधखुले बाल,
बालों में अजब सुनहरापन
चरूपई वक्ष को छूकर ज्यों
उड़ जाती केसर की उसाँस।

कितना सुन्दर सहज चित्र है। 'अजब सुनहरापन' अजब शब्द का कितना अनूठा प्रयोग है। शब्दों के ऐसे 'टच' भारती की एक सुन्दर विशेषता है। 'सुभाष की मृत्यु पर' में भी मार्मिकता के टच हैं—

एक फैंटेसी फैंटेसी ही है

इसके बाद 'बरसाती झोंका' 'यह दर्द' और 'चुम्बन' चार-चार पंक्तियों की तीन कवितायें हैं जो आकार के साथ प्रकार में भी छोटी ही है। 'चुम्बन' कविता की दुरूहता तो खटक ही जाती है।

'जाड़े की शाम' कुछ समय के लिये कवि को अपनी निराली दुनिया से क्लर्कों, उनकी पत्नियों की भुनभुन और बच्चों की चीख-पुकारों के बीच खींच लाती है पर फिर 'बिछुड़ी प्रिया' का चिन्तन उसे लौटा ले जाता है जिसका अभाव कवि को थका और पराजित बना रहा है।

'कविता की मौत' में फिर उस दर्द के स्वर हैं जो इस पीस डालने वाली जिन्दगी के नीचे दब कर कराह बन जाते हैं—

भूख ने उसकी जवानी तोड़ दी
उस अभागिन की अछूती माँग का सिंदूर
मर गया बन कर तपैदिक का मरीज

और सितारों सी मासूम सन्तानें
माँगने को भीख हैं मजबूर !

किंतु जीवन की ये आहें और कराहें ही तो उसकी अथ-इति नहीं हैं—

आदमी इतना नहीं कमजोर है
पलक के जल और माथे के पसीने से
सींचता आया सदा जो स्वर्ग की भी नींव
ये परिस्थितियाँ बना देंगीं उसे निर्जीव !
झूठ है यह
फिर उठेगा आदमी

और कवि की आत्मा के इस विश्वास में टूटकर बिखरती मानवता के लिये नये पथ का पाथेय है।

श्री भारती की रचनाओं को पढ़कर यह कहना ही पड़ता है कि 'लिखा है और खूब लिखा है।' उनके अनुसार वे अपनी रुचि और ईमान की कवितायें लिखते हैं किन्तु कविता की कसौटी तब तककेवल कवि का रुचि और ईमान नहीं बन सकती जब तक वह हमारी और आपकी रुचि और ईमान को भी स्पर्श न कर ले।

भारती की प्रस्तुत रचनायें दो कोटि की हैं, एक रूप-यौवन के मांसल गीत हैं और दूसरे युग की समस्याओं से पीड़ित कवि के सृजनात्मक विश्वास को लिये स्वर हैं। प्रथम कोटि की कविता जहाँ केवल प्रभावित कर रह जाती है। दूसरी कोटि की आस्था का स्वर अभिनन्दनीय बन जाता है।

भारती के पास कलाकार की वह सामर्थ्य है, वह तूलिका है जो उत्कृष्ट कला का सृजन अवश्य कर सकती है। किन्तु कला को भी साधना की आवश्यकता होती है, ऐसी साधना जो नीले गगन के सपनों का धरा की धूल से अभिषेक कर सके और जिसमें केवल हृदय को छू देने की मार्मिकता नहीं, प्राणों में अमर गूँज बनकर समा जाने की शक्ति भी हो।

भारती के कवि से 'ध्वंस में पड़ी मूर्च्छिता जिन्दगी को' बहुत आशायें हैं।

दो शब्द भारती की भाषा और छन्द-योजना के सम्बन्ध में भी। इनकी भाषा भाव की सीधी-सादी अनुगामी ही नहीं, ऐसी सहचरी भी है जिसका साथ पग-पग पर फूल खिलाता चलता है। एक ओज का स्वर इन कविताओं में लहराता ही रहता है। छन्द का बन्धन तो सप्तक का कोई कवि नहीं मानता किन्तु फिर भी भारती ने इस क्षेत्र में अनावश्यक प्रयोग कर अपनी शक्ति व्यर्थ नष्ट करने से बचा ली है।

अपने वक्तव्य में कही अधिकांश बातों का प्रमाण कवि की रचनायें हैं। यह वास्तव में इनकी विशेषता कही जा सकती है कि ये जो समझते हैं, उसे साफ-साफ समझते और समझा सकते हैं। हाँ, आप उनसे सहमत हों या न हों, यह प्रश्न दूसरा है।

युग की वास्तविकताओं से कवि परिचित है, इसके घनिष्ठतर होने की आवश्यकता है। 'गुनाहों का गीत' गाकर कवि स्वयं को प्रसन्न करले, किन्तु हमारे लिये तो सृजन के, विश्वास के वे गीत गाये जो यदि वह चाहे तो खूब गा सकता है।

भारती में आस्था का स्वर है और वह स्पष्ट है, सशक्त है, अन्य कवियों की भांति क्षीण या दिग्भ्रम में भटका हुआ नहीं है।

यह कहना अनुचित न होगा कि भारती की तूलिका में रंग और स्वर में शक्ति दोनों हैं और यदि 'मात्र प्रभाव डालने' से आगे बढ़ वे 'अधबनी धरा' का हाथ थाम लें तो उनकी कला धन्य हो उठे।

उचित या अनुचित, इन्होंने जो कहा है स्पष्ट कहा है और जैसे डंके की चोट पर कहा है। छायावादियों के छायापथ से तो ये दूर हैं ही, प्रयोगवादियों की टेढ़ी-मेढ़ी राहों का भी इन्हें मोह नहीं प्रतीत होता। ये तो जैसे राजमार्ग के पथिक हैं, उस नूतन राजमार्ग के जिसका निर्माण अभी इन्हीं के जैसे सशक्त कलाकारों द्वारा होना है।

प्रयोग—परम्परा एवं व्यक्ति

आधुनिक अंग्रेजी साहित्य में टी० एस० इलियट का एक समीक्षक, नाटककार तथा महान् युग-कवि के रूप में महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन तीनों रूपों में उसका कौन सा रूप अधिक गौरवास्पद है यह कह सकना कठिन है।

अंग्रेजी साहित्य के अतिरिक्त अन्य साहित्यों पर भी उसका प्रभाव पड़ा है। हिन्दी का प्रयोगवादी साहित्य ज्ञात एवं अज्ञात रूप से उससे पर्याप्त प्रभावित प्रतीत होता है। प्रयोगवादी कवि एवं समीक्षक बहुधा उसका उल्लेख किया करते हैं। सन् १९१७ ई० में उसका सुविख्यात निबंध "परम्परा और वैयक्तिक प्रतिभा" (१) प्रकाशित हुआ था। यह निबन्ध उसके समस्त साहित्य की बुनियाद है। यहाँ उस निबन्ध के कुछ विचारणीय अंश प्रस्तुत हैं।

टी० एस० इलियट मानता है कि यदि परम्परा से तात्पर्य केवल अपने पूर्व की पीढ़ी का अन्धानुसरण है तो अवश्य ही वह त्याज्य है; पर वास्तव में परम्परा बहुत विस्तृत महत्व रखती है। उसे पैतृक सम्पत्ति की तरह नहीं प्राप्त किया जा सकता है। इसके लिये पहली आवश्यकता है—एक ऐतिहासिक जागरूकता की; और ऐतिहासिक जागरूकता के लिये केवल प्राचीन के पुरानेपन को समझना ही पर्याप्त

१. Tradition and the individual Talent--The Sacred wood, Page 47.

६

नहीं वरन् प्राचीन के नयेपन को भी समझना आवश्यक है । इलियट् के इस कथन से यह स्पष्ट है कि परम्परा के नाम पर न तो प्राचीन अभिनन्दनीय है न त्याज्य । उचित यह होगा कि प्रत्येक नया साहित्यकार परम्परा का अध्ययन करें, रूढ़िवादी होने के नाते नहीं, वरन् प्राचीनता की पृष्ठभूमि में नये चित्रों को अधिक सूक्ष्मता से उभार सकने के लिये ।

इलियट ने स्पष्ट कहा है कि किसी भी कवि अथवा कलाकार का नितान्त अपने आप में ही कोई अर्थ नहीं होता । उसका महत्व, उसका मूल्यांकन उसके और प्राचीन कवियों एवं कलाकारों के सम्बन्ध का मूल्यांकन है । हम केवल उसका अकेले का ही मूल्य नहीं आँक सकते । हमें गत कवियों और उसमें जो साम्य एवं भिन्नता है उस ओर ध्यान देना ही होगा ।

प्राचीन और नवीन के प्रति इलियट के विचार बड़े सुलझे हुए हैं । उसने कहा है कि कला के वर्तमान रूप अपने में एक आदर्श विकास-क्रम में सजे पाये जाते हैं पर यह विकास-क्रम किसी वास्तव में नये कलात्मक रूप के आ जाने पर फिर से नये प्रकार से सज जाता है । इसका यह अर्थ नहीं कि पूर्व रूप अपूर्ण थे, वरन् नये कलात्मक रूप के पूर्व का विकास-क्रम अपने ही में पूर्ण था, परन्तु नये कलात्मक रूप के साथ उस विकास-क्रम को बनाये रखने के लिये पूरे विकास-क्रम को सँवारना-सुधारना होता है । इस प्रकार से हर कलात्मक रूप का मूल्य तथा उसका सम्पूर्ण विकास-क्रम से सम्बन्ध पुनः सँवर जाता है । प्राचीन को नवीन के अनुसार उसी प्रकार परिवर्तित किया जाना चाहिये जैसे कि प्राचीन नवीन का मार्ग-दर्शन करता है ।

पुराने और नये का यही समन्वय है जो सिद्धान्त रूप से स्तुत्य है ।

इलियट, जिसका प्रयोगवादी बहुधा उल्लेख करते हैं, के इन विचारों से, श्री अज्ञेय के निम्न कथन की तुलना कीजिये— "जो लोग प्रयोग की निन्दा करने के लिये परम्परा की दुहाई

देते हैं, वे यह भूल जाते हैं कि परम्परा कम से कम कवि के लिये कोई ऐसी पोटली बाँधकर अलग रखी हुई चीज नहीं हैं जिसे वह उठाकर सिर पर लादले और चल निकले (कुछ आलोचकों के लिये भले ही वैसा हो)। परम्परा का कवि के लिये कोई अर्थ नहीं है जब तक वह उसे ठोक-बजाकर, तोड़-मरोड़कर देखकर आत्मसात् नहीं कर लेता; जब तक वह इतना गहरा संस्कार-नहीं बन जाती कि उसका चेष्टापूर्वक ध्यान रखकर निर्वाह करना अनावश्यक न हो जाय। अगर कवि की आत्माभिव्यक्ति एक संस्कार विशेष के वेष्ठन में ही सहज सामने आती है, तभी वह संस्कार देने-वाली परम्परा कवि की परम्परा है, नहीं तो वह इतिहास है, शास्त्र है, ज्ञान-भण्डार है जिससे अपरिचित भी रहा जा सकता है। अपरिचित ही रहा जाय, ऐसा आग्रह हमारा नहीं है—हम पर तो बौद्धिकता का आरोप लगाया जाता है। पर इससे अपरिचित रहकर भी परम्परा से अवगत हुआ जा सकता है और कविता की जा सकती है।[1]

अज्ञेयजी अपने कथन में अस्पष्ट से हैं। परम्परा जैसे महत्वपूर्ण प्रश्न से जैसे वे कतरा जाना चाहते हैं। पर यह तो स्पष्ट है कि अज्ञेयजी के लिये परम्परा एक गौण वस्तु है। परम्परा यदि किसी भाँति कवि के संस्कार में आ जाती है तब तो ठीक है अन्यथा उसका इतना महत्व नहीं कि कवि उसे प्रयासपूर्वक ग्रहण ही करें और इस भाँति अज्ञेयजी ने एक प्रकार से परंपरा से अधिक व्यक्ति को महत्व दिया है। रहा संस्कार का प्रश्न जो बड़ा भ्रामक है। संस्कार यदि देशगत अथवा समाजगत है। तो उसकी रूप-रेखा कुछ स्पष्ट हो सकती है, अन्यथा व्यक्तिगत संस्कार तो प्रत्येक व्यक्ति के अपने हो सकते हैं।

वास्तव में परम्परा कोई ऐसी जड़ वस्तु नहीं जो समय और युग के अनुसार परिवर्द्धित एवं परिवर्तित न की जा सके। टी० एस० इलियट के अनुसार नई कलात्मकता पुरानी को नये ढङ्ग से सँवार-

१. **दूसरा सप्तक, भूमिका-पृष्ठ ६**

सुधार दिया करती है अतः यह निश्चित है कि परम्परा युग और समय के अनुसार विकसित होती रहती है। हर युग अपने अनुकूल प्रतिभा को जन्म देता रहा है जो उसकी आवश्यकताओं को समझ सके जो उसके साथ हँस और रो सके। हर युग ने परम्परा (रूढ़ि कहें तो अधिक उचित होगा) के प्रति किसी न किसी रूप में विद्रोह किया ही है। आज भी ऐसा विद्रोह हो रहा है, होना भी चाहिये; किन्तु यह विद्रोह नवीन की प्राण-प्रतिष्ठा के प्रति उतना सचेत नहीं है जितना प्राचीन को विनष्ट करने के प्रति है। हर नई वस्तु केवल नई होने के कारण ही ग्राह्य नहीं हो जाती। नवीनता ही अच्छाई की कसौटी नहीं है। जबकि चली आती हुई मान्यताओं में बुराइयाँ या कमियाँ हो सकती हैं किन्तु उनकी उन विशेषताओं की ओर से भी आँखें नहीं मूंदी जा सकती जिनके कारण एक बार उन्हें प्रतिष्ठा मिल चुकी है। परम्परायें केवल बन्धन ही नहीं होतीं, उनका उपयोग मौलिकता के साहचर्य से नव-निर्माण करने में किया जा सकता है। आज परम्परा को केवल बन्धन ही माननेवाले उस पर ऐसी चोटें कर रहे हैं कि उस बन्धन के टूटने के साथ परम्परा के अङ्ग भी क्षत-विक्षत हो उठे हैं।

आज व्यक्ति जीवन के हर क्षेत्र में भयंकर उथल-पुथल का सामना कर रहा है और यह भी निश्चित है कि इसी उथल-पुथल में उसे अपने लिये नये मार्ग का निर्माण करना है; केवल इतना ध्यान रखना होगा कि नवीनता के लिये भी आधारभूत सिद्धान्तों की आवश्यकता है। हर नवीनता सिद्धान्त नहीं बन सकती। चले आते हुए का तिरस्कार अथवा उपेक्षा नहीं, उसकी विस्तृत एवं प्रतिष्ठित पृष्ठभूमि पर (युग-सापेक्ष औचित्य के साथ) निकटतर नवीनता का सृजन होना चाहिये।

"प्रगतिशील कलाकार को आवश्यक रूप में पुरानी शैलियों, संगठन-प्रकारों में परिवर्तन, संशोधन अथवा क्रान्ति करनी पड़ती है, आवश्यक रूप में उसे अपनी कला में नवीन विषय-वस्तु का समावेश

करना पड़ता है। किन्तु इस सबका उद्देश्य एक ही होता है, मानव-मस्तिष्क में यथार्थ की अधिक समृद्ध चेतना उत्पन्न करना और सृजनात्मक संगठन के नये रूपों में मानव-जीवन की विविधता एवं स्वतंत्रता का प्रसार करना।"[1]

इलियट ने अपने उसी निबंध में आगे व्यक्तिगत प्रतिभा पर विचार किया है:—

किसी ने कहा है कि पुराने लेखक हमसे दूर हैं क्योंकि हम उनसे बहुत अधिक जानते हैं। ठीक है, पर वे वही हैं जो हम जानते हैं। + + +कवि को भूत के प्रति जागरूकता प्राप्त करनी और विकसित करनी चाहिये और यह उसे जीवन भर करते रहना चाहिये।

कवि को अपने वर्तमान व्यक्तित्व को किसी अधिक मूल्यवान वस्तु के लिये अर्पित करना पड़ता है। कलाकार की प्रगति निरंतर आत्म-त्याग तथा आत्माहुति ही होती है।

यह आत्माहुति किस प्रकार होती है तथा उसका सम्बन्ध परम्परा से क्या होता है इसे समझाने के लिये इलियट ने रसायनशास्त्र का एक बहुत उपयुक्त दृष्टान्त दिया है।

जब हाइड्रोजन सैस और आक्सीजन गैस प्लैटिनम के एक टुकड़े की उपस्थिति में सम्पर्क में आती है तब सल्फ्यूरस एसिड बन जाता है। यह सल्फ्यूरस एसिड न बन सकता यदि प्लैटिनम न होता, परन्तु सल्फ्यूरस एसिड में प्लैटिनम का कुछ भी अंश नहीं है और प्लैटिनम भी त्यों का त्यों बना रहता है। कवि का मस्तिष्क भी प्लैटिनम के टुकड़े के समान है।

वह जो कुछ कहता है उसके अपने अनुभव पर आंशिक या पूर्ण रूप से आधारित हो सकता है, पर उसके व्यक्तित्व में उपभोक्ता का अंश सृजनकर्ता के अंश से जितना दूर एवं पृथक् होगा, उतना ही वह

---

१. डा० देवराज, आधुनिक समीक्षा, पृ० ४८

दक्ष कलाकार होगा और उतनी ही कुशलता से वह अनुभूति को पचाकार अभिव्यक्ति को सबल बना सकेगा।

वास्तव में कवि का मस्तिष्क असंख्य भावनाओं, छायाओं एवं मुहावरों को ग्रहण करता रहता है जब तक कि वे मिलकर किसी नई वस्तु का सृजन नहीं कर लेते।+++

उदाहरण के लिये कीट्स की 'ओड टू नाइटिंगल' में अनेक ऐसी भावनायें हैं जिनका नाइटिंगेल से विशेष सम्बन्ध नहीं है पर जो कदाचित् नाइटिंगेग की प्रसिद्धि और आकर्षक नाम के कारण नाइटिं-गेल से सम्वन्धित कर दी गई हैं।

वास्तव में एक असफल कवि जहाँ उसे सजग होना चाहिये, नहीं रहता और जहाँ सजग न होना चाहिये वहाँ हो जाता है। दोनों प्रकार कीं गलतियाँ उसे व्यक्तिवादी बना देती है। काव्य भावों की अभि-व्यक्ति कर छुटकारा पाना नहीं वरन् भावों से पलायन है,वह व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति नहीं वरन् व्यक्तित्व से पलायन है। पर जो वास्तव में भाव-प्रवण हैं तथा व्यक्तित्व रखते हैं वही समझते हैं कि भावों और व्यक्तित्व से पलायन क्या है।

कला में अभिव्यञ्जनीय भाव व्यक्तिपरक नहीं होते। एक कवि तब तक अव्यक्तिवादी नहीं हो सकता जब तक कि वह अपने आपको लक्ष्य के लिये अर्पित नहीं कर देता। जब तक वह न केवल वर्तमान में रहना सीखता है वरन् भूत के वर्तमान रूप में भी रहता है, तथा जब तक वह बीते हुए तथा वर्तमान के प्रति जागरूक नहीं रहता वह समझ नहीं सकता।

मैडिन्टन मरे के व्यक्तिवादी सिद्धान्त का इलियट ने विरोध किया है जिसके स्वर अपने पूर्णत्व को ही साहित्य-सृजन का मूल कारण मानते हैं स्वच्छन्दतावादी कवियों की इसी कारण इलियट ने भर्त्स्ना सी की है कि वे अपने व्यक्तित्व का उचित नियमन कर पाने में असमर्थ होते हैं और इसी कारण उनकी अभिव्यक्तियाँ अस्पष्ट और असंबद्ध होती हैं। ये स्वच्छन्दतावादी कवि अपनी ही विशिष्टताओं

की नींव पर अपनी स्वतंत्रतम और अद्भुत स्थिति का डंका पीटते हैं।

इलियट ने जोर देकर कहा है कि व्यक्तित्व और व्यक्तिवाद के नाम पर ऐसी कृतियाँ प्रस्तुत की गई हैं जिनके साथ जनजन की सहानुभूति होना अत्यन्त कठिन है। ऐसे काव्यों का ध्येय सामान्य भावों का सृजन करना नहीं, अपने विचित्र और नितान्त व्यक्तिगत दृष्टिकोणों का अंकन हो जाता है; परिणामस्वरूप ऐसी कृतियाँ जन सामान्य से दूर हट जाती हैं और अपने आप में संकुचित एक विचित्र सी वस्तु होकर रह जाती हैं। व्यक्तित्व के प्रति कलाकार का यह दुराग्रह एक बड़ा भ्रम है जो वे व्यक्तित्व को सृजनात्मकता का एक माध्यम न मानकर उसे ही वर्ण्य विषय मान लेते हैं।

हमारे सभी प्रयोगवादी कहे जाने वाले कवि, कम या अधिक, इस व्यक्तिवाद से आक्रान्त अवश्य हैं। डा० रघुवंश ने प्रयोगवादी काव्य की एक विशेषता ही अति वैयक्तिकता मानी है।

वास्तव में देखा जाय तो इन कवियों के लिये अपने व्यक्तित्व से बचना सम्भव ही नहीं है। इनमें से अधिकांश कवियों की प्रवृत्ति एकान्त अन्तर्मुखी है और वे अपने मन की निविड़ता में उलझे हुए हैं—सबसे अधिक अज्ञेय। मनोविश्लेषण-शास्त्र के प्रभाववश अव-चेतन का अध्ययन इनकी कविता का मुख्य विषय है + + + कवि अपने अवचेतन, अर्धव्यक्त अनुभव खंडों को जो एकान्त व्यक्तिगत होते हैं, यथावत् वस्तु रूप में अंकित करने का प्रयत्न करता है।[1]

एक प्रकार से इसे साहित्य में प्रयोगवाद का नहीं व्यक्तिवाद का युग कहा जा सशता है। व्यक्ति स्वयं को समाज से अधिक महत्वपूर्ण समझता है। क्योंकि वह मानता है कि उसी से तों समाज निर्मित होता है, फिर भी, तनिक भी विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि व्यक्ति ही समाज की इकाई है फिर भी दहाई से इकाई

---

१. डा० नगेन्द्र : विचार और विवेचन, पृ० १४३-४४

महत्वपूर्ण नहीं हो सकती । प्रत्येक व्यक्ति का, विशेषकर प्रत्येक कलाकार अथवा कवि का, निस्सन्देह अपना एक व्यक्तित्व होता है किन्तु प्रत्येक व्यक्तित्व काव्य का विषय न बन सकता है न बनना चाहिये । इस दिशा में प्रयास केवल उलझनों की ही सृष्टि कर सकता है । कवि का व्यक्तित्व उसकी रचनाओं में गुँथकर प्रस्फुटित हो यह नहीं कि वह उन पर हावी हो जाए । व्यक्तिगत अनुभूतियाँ और सँवेदनायें यदि सामाजिक स्वर में घुल-मिल जाती है तो उनकी गूँज अमर हो जाती है अन्यथा वे अपने चेतन, अवचेतन अथवा अचेतन के सुख-दुःख के अस्फुट गीत गाकर विलीन हो जाती हैं । कवि होने की सामर्थ्य अथवा विश्वास हो जाने से ही कवि को प्रतिष्ठा नहीं मिल जाती उसे अमरत्व मिलता है व्यक्तिगत संवेदनाओं के माध्यम से विश्व के प्राणों को छू लेने पर ही । कलाकार का व्यक्तित्व समर्पित हुए बिना लोक-जीवन को स्पर्श नहीं करपाता और यही कारण है कि धन राशि पर कुण्डली मार कर बैठे सर्प के समान अपने अहम् और व्यक्तित्व के प्रति इसने सतर्क इन कवियों की काव्य-राशि भी गड़े खजाने की भाँति दुष्प्राप्य और निरर्थक है । आज की नई कविता का क्षेत्र की गणनातीत कल्पनाओं, चेतन, अवचेतन एवं अचेतन मन की अनुभूतियों एवं अन्तर्द्वन्द्वों का ऐसा वर्णनातीत इतिहास है जिसका वर्णन किसी भाँति हो जाय किंतु ग्रहण एक पहेली ही सिद्ध होता है ।

परपम्रा के स्थान पर स्वतन्त्र व्यक्तिवाद शायद हमें कहीं का न रखेगा । हर व्यक्ति अलग अलग परम्परा का निर्माणनहीं कर सकता । समुदाय—कहने वाले और सुननेवालों का—ही परम्परा को जन्म देता और विकसित करता है । मान्यताओं के प्रति विद्रोह करने से ही नये मूल्यों का निर्माण नहीं हो जाता । युग की आवश्यकता के अनुरूप युग को मोड़ देने वाली अथवा नये मूल्यों का निर्माण करने वाली प्रतिभायें 'बहुजन हिताय' होने पर ही अपने इष्ट को प्राप्त कर सकी हैं ।

प्रसिद्ध चित्र-गुरु स्व० श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुर का एक शिष्य

एक बार योग सीखने के फेर में पड़कर पागल हो गया। एक रात को उसने एक 'शीट' पर आठ गोल-गोल चिन्ह बनाये। अवनी बाबू ने उससे पूछा कि यह क्या है ? उसने कहा These are goats (यह बकरियाँ हैं) अवनीबाबू ने कहा कि इसमें मुझे तो बकरी कहीं नहीं दिखाई देती तब उसने कहा "These are my Goats'. (यह मेरी बकरियाँ हैं) अवनीबाबू ने कहा जब 'अपनी' बात है तब तो कुछ कहना ही नहीं है। उनका कहना था कि परम्परा को छोड़ देने पर यही होगा।

ठीक यही बात आज के प्रयोगवादी काव्य के एक बड़े अंश के विषय में कही जा सकती है। हम यदि यह कहें कि हमें तो ऐसा नहीं लगता जैसा आपको लगता है तो उत्तर मिलता या मिल सकता है कि "खैर हमें तो लगता है और इस 'हम' से अधिक मूल्यवान आज के 'अहम्-ग्रसित' कवि के लिये कदाचित् और कुछ नहीं है। फिर भी इतना अवश्य है कि "इस दृष्टि से विचार करने पर भी प्रयोगशील कवियों से शंकित या निराश होने की बात नहीं है। यद्यपि ये अभी बहुत कुछ अपने व्यक्तित्व और अहं में उलझे हुए जान पड़ते हैं, परन्तु मन में मार्ग खोज निकालने की उत्कट इच्छा भी है।[2]

यदि हमारे ये कवि अपने ही आन्तरिक संसार के प्रति जागरूक रहने के साथ अपने सामाजिक उत्तरदायित्व के प्रति ईमानदार भी रह सके तो अपना मार्ग खोजने में सफल हो सकते हैं। व्यक्तिगत अनुभूतियाँ एवं संवेदनाओं के मूल्यों की कसौटी है। उनके व्यक्ति की ही नहीं, समष्टि की भी सम्पत्ति बन सकने की सामर्थ्य।

---

१. 'कल्पना' हैदराबाद जून १९५३, पृ० ४८७; अबनीबाबू के शिष्य के संस्मरण ले० परमेश्वरीलाल गुप्त।

२. डा० रघुवंश : आलोचना २, पृ० ६६

प्रयोग, कला एवं कलाकार

प्रत्येक कलाकार चाहे कला का कितना ही बड़ा पुजारी क्यों न हो फिर भी समाज का एक सदस्य अवश्य होता है और यह एक स्पष्ट तथ्य है कि प्रत्येक व्यक्ति का समाज के प्रति थोड़ा या बहुत उत्तरदायित्व अवश्य होता है। सृजन की सामर्थ्य होने के कारण कलाकार का उत्तरदायित्व समाज के प्रति कहीं अधिक बढ़ जाता है। केवल 'स्वान्त सुखाय' कोई अर्थ ही नहीं रखता। कवि अपने भावावेश को व्यक्त करने के लिये अपने मन मस्तिष्क पर घिरे आते भाव-मेघों को बरसा कर हल्का होने के लिये काव्य सृजन करता है यह माना जा सकता है। किन्तु जब एक वस्तु प्रचुर होती है तो कई तक पहुँचती भी अवश्य है और इसी कारण यह आवश्यक हो जाता है कि कवि का कहा हुआ अपने चारों ओर के समुदाय से अधिक से अधिक सामंजस्य स्थापित करे। काव्य सृजन महान् होने पर भी अपने आप में इष्ट नहीं हो सकता और न कोई भी कवि अथवा कलाकार अपने सामाजिक उत्तरदायित्व के प्रति उदासीन होने का अधिकारी ही है। कवि, कवि होने के पहले मानव है और मानव होने के नाते संसार और समाज से ऊपर चाहे जितना उठे, किन्तु नितान्त विलग कभी नहीं हो सकता।

आज के प्रयोगवादी कवि अपने वक्तव्य में एक ओर जहाँ अपनी सामाजिक चेतना के प्रति अत्यंत जागरूकता प्रकट करते हैं वहाँ दूसरी ओर नई राहों की खोज में यह भूल से जाते हैं कि उन राहों पर उनका अकेले ही चल निकलना पर्याप्त नहीं, उन्हें औरों को भी साथ लेना है। नवीनतम राहें भी यदि केवल कुछ ही के लिये सुलभ हो सकें तो वे सूनी ही पड़ी रह जायेंगी। आज का त्रस्त और आकुल कवि इस सारी घुटन और उलझन से उभर पाने के लिये यदि नई राहें ढूंढ़ निकालना चाहता है तो उसका शत बार स्वागत है किन्तु उसे इस अन्वेषण को ही साध्य न मान लेना चाहिये। उसे अन्वेषण करना है किसी स्थिति तक पहुँच पाने के लिये। अन्वेषण अपने आप में कोई स्थिति नहीं है।

आज के कलाकार को अपने सामाजिक उत्तरदायित्व के प्रति और भी सचेत होना है। कुण्ठाओं और उलझनों के प्रति जागरूक रहना ही पर्याप्त नहीं है, आवश्यकता है इस सारी अस्तव्यस्तता के बीच नये राजमार्ग के निर्माण की, जिसपर अधिक से अधिक जन-समुदाय चल निकले।

अज्ञेय जी का कथन सर्वथा उचित है कि "प्रयोग निरंतर होते आये हैं और प्रयोगों के द्वारा ही कविता या कोई भी कला, कोई भी रचनात्मक कार्य आगे बढ़ सका है + + केवल प्रयोगशीलता ही किसी रचना को काव्य नहीं बना देती।" वास्तव में समय का प्रवाह परिस्थितियों की धारा को मोड़ता चलता है। सामाजिक व्यवस्थाओं में निरंतर परिवर्तन होते हैं। मूल्य बदलते रहते हैं और इन सबसे घिरा व्यक्ति निरन्तर सामंजस्य की चेष्टा में व्यस्त रहता है। भक्ति काव्य, महान् होने पर भी आज हमारे लिये उतना मूल्य नहीं रखता। यह नही कि उसकी महानता में अन्तर आगया है वरन् आज के मूल्यों के अनुसार वह उतना उपादेय नहीं रहा। आज की भौतिकवादी तार्किक बुद्धि भक्ति के प्रति श्रद्धायुत हो सकती है उसमें विभोर नहीं हो सकती।

कला के रूप, शैली और शिल्प आदि इसलिये बार बार माँजे, सँवारे और निखारे जाते रहे हैं जिससे कला और मानव के सामाजिक सम्बन्ध प्रतिबिम्बित होते रहें। कला के रूप अपने आप में उसने महत्वपूर्ण नहीं, वे नई विषय वस्तु को अधिक उचित और निकट रूप देने के माध्यम भर हैं। आज के घोर भौतिक संघर्षों का साक्षी कोई भी कवि चले आते हुए माध्यमों को पर्याप्त नहीं मानता, न मान सकता है। आज का कलाकार अनगिन समस्याओं से कहीं अधिक त्रस्त है। हर युग को अपने से पहले की समस्यायें पुरानी लगती हैं क्योंकि वे बदल चुकी होती हैं और हर युग के बदलते हुए प्रश्न नये समाधान चाहते हैं किन्तु प्रयोगों का केवल यह अर्थ नहीं कि वे जिस किसी नवीनता को आग्रहपूर्वक ग्रहण कर लें, केवल इसलिये कि वह कम से कम रूढ़ि तो नहीं है।

"अगर कोई कलाकार समाज और मानव प्राणियों के बारे में सत्यों का उद्घाटन करना चाहता है तो वह आवश्यकतावश कला के ऐसे रूपों और शैलियों को ही अपनाना चाहेगा जो उसके अभीष्ट को पूरा करने में सहायक हों, जिस पाठक या दर्शक-वर्ग तक वह पहुँचना चाहता है, उसे यथासम्भव निकट लायें और उसे अपने विचारों को अभिव्यक्ति देने की अधिकाधिक स्वतन्त्रता दें। अपने लिए किसी कला-रूप या शैली को चुनते समय कलाकार के लिए यह बात ही निर्णायकारी होती है, न कि किसी कला रूप का 'प्रकृत' या रूढ़ियों से मुक्त नज़र आने वाला गुण।

कला और जीवन का सम्बन्ध अविच्छिन्न है। प्रत्येक प्रयोग जो युग-सत्य को अधिक उघाड़ सके, जो व्यक्ति और समाज के बीच का सन्तुलन अधिक से अधिक बनाये रख सके, अभिनन्दनीय है।

शैली और टैकनीक सम्बन्धी परिवर्तन महत्वपूर्ण होते हुए भी वस्तु-विषय से अधिक महत्वपूर्ण नहीं।

कैसे कहा गया है, यही सब कुछ नहीं, क्या कहा गया है, यह अधिक

महत्व रखता है। काव्य का शिल्प यदि उसका शरीर है तो वस्तु उसकी आत्मा। आत्मा के लिये शरीर एक वाहन है जिसके बिना उसकी सत्ता ठोस अर्थ नहीं रखती, किन्तु आत्माहीन शरीर सब इन्द्रियों से पूर्ण होने पर भी निरा शव हैं।

"इसी प्रकार नये प्रयोग क्या जीवित सत्य को अभिव्यक्ति देते हैं—इसके लिए हमें केवल यही नहीं देखना चाहिए कि जीवन के किसी अनुभव की पुनः सृष्टि करने में वह कितने सक्षम हैं, बल्कि यह कि उस अनुभव की मानवीय वस्तु कैसी है, उस कला में किस प्रकार का अनुभव व्यक्त हुआ है। अर्थात् अपने समय के समग्र सामाजिक जीवन की अपेक्षा वह अनुभव कितना सारवान् और सङ्गत है, उसमें व्यक्त भावनाएँ और विचार कितने मानवीय हैं, किस प्रकार के मनुष्यों को कला में प्रविष्ट किया गया है। और अन्त में हमें देखना चाहिए कि नये प्रयोग जीवन का जो आकलन करते हैं, वह कैसा है; अर्थात् समाज के भीतर मानव-सम्बन्धों के बारे में लेखक या कलाकार का दृष्टिकोण क्या है। ये कतिपय कसौटियाँ हैं, जिन पर किसी भी नये प्रयोग को परखना आवश्यक है। इन प्रश्नों को बिना उठाये, केवल प्रयोग को आत्यन्तिक महत्व देना—चूँकि प्रयोग निरंतर होते आए हैं—परम्परा से ही विच्छेद करना नहीं है, बल्कि पाठकों से भी विच्छन्द कर लेना है, और प्रयोगों को भी निरर्थक बना देना है।" *

प्रत्येक युग की कला अपने वस्तु सत्य को प्रतिबिम्बित करने के लिये युगानुरूप रूपों को ढूँढ़ निकालती है। जिस भाँति सामाजिक जीवन में परिवर्तन नहीं रोके जा सकते, उसी भाँति साहित्य की परम्पराओं में भी। समाज के चिरविकसित परिवर्तित होते शरीर के लिये कला के उसके अनुरूप ही आवरण की आवश्यकता बराबर रहती रही है और रहेगी। आजका सुन्दर से सुन्दर वस्त्र भी हर

* शिवदानसिंह चौहान 'आलोचना' अंक २, पृष्ठ ५.

वस्तु और हर परिस्थिति के लिये सदैव उपयोगी प्रमाणित नहीं हो सकता। ठीक उसी भाँति कला का सर्वश्रेष्ठ रूप भी समय और काल की परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन या परिवर्धन की अपेक्षा करने लगता है अतः कला के पुजारियों या हमारे आग्रही प्रयोगशील कवियों के लिये केवल रूढ़ि से विच्छेद करना ही एकमात्र इष्ट न होना चाहिये। उनके नये प्रयोग तभी सार्थक हैं जब वे कवि और श्रोता के मध्य के आदान-प्रदान को अधिकाधिक व्यापक बनायें।

प्राचीन युग में भी कई महान् कलाकार एवं कवियों को विरोध का सामना करना पड़ा है किन्तु ऐसा विरोध इसलिये हुआ कि उनकी मौलिकता सर्वसाधारण के लिये एक चौंका देनेवाली वस्तु बनकर आई इसलिये नहीं कि वे समझे ही न जा सकें।

श्रीअज्ञेय के अनुसार 'सच्चा कलाकार अपने समय में नहीं समझा जाता', इसलिये वह भावी संतति के लिये ही कला-सृष्टि करता है "क्योंकि आज का प्रयोग तब की परम्परा हो जाती है।" अपनी निज की अनुभूति और संवेदनाओं को अन्यों तक पहुँचाने के लिये हर समय का कलाकार व्यग्र रहा है। यह साधारणीकरण की समस्या भी चिरन्तन है। आज यदि अज्ञेय इस साधारणीकरण के प्रश्न को सबसे महत्वपूर्ण बताते हैं तो यह कोई नई बात नहीं। नया है वह, जो इस साधारणीकरण के नाम पर हमारे सामने प्रस्तुत किया जा रहा है। वास्तव में अधिकतर हमारे सम्मुख हैं नितान्त व्यक्तिनिष्ट अनुभूतियाँ, उलझे संकेत, अस्पष्ट अर्थ विन्यास, और उन सबकी अधिक निकट और अधिक सबल अभिव्यक्ति के नाम पर उनका एक अटपटा शृंगार। वाल्मीकि से लेकर आज तक के सभी महान् कवि अपनी विशेषताओं में महान् होते हुए भी एक दूसरे से जैसे एक आन्तरिक, अविच्छिन्न, अविभाज्य तन्तु से जुड़े हुए हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि वे एक दूसरे से प्रभावित ही होते रहे। प्रभावित वे अवश्य हुए है किन्तु वह प्रभाव जब भी व्यक्त हुआ आत्मसात् होकर हुआ। क्या आज का कवि छायावाद के प्रति प्रकट रूप में विद्रोही होने पर भी

एक दूरी तक उससे प्रभावित नहीं ? जिन यौन कुण्ठाओं के प्रति प्रयोगशील कवि अत्यधिक सचेत: है वे क्या छायावाद में वर्तमान न थीं ? इसके अतिरिक्त आज के कवि की भाव संकुलता और काल्पनिक उड़ाने भी क्या छायावाद से प्रभावित नहीं ?

प्रेम आदि-युग से काव्य का विषय रहा है। प्रेम हृदयों का आकर्षण है, मानव की एक स्वाभाविक चाह और तृप्ति है। किन्तु फिर भी यह चिर नवीन क्यों है ? दुष्यंत शकुन्तला, रोमियो जूलियट, लैला-मजनूँ, आज के शरत् के देवदास और पार्वती इस एक ही भावाधार पर चित्रित प्रस्तुत किये गये हैं फिर भी उन सबके प्रेम की अपनी विशेषता है अपना महत्व है अपनापन है। एक ही भाव अनेकरूपी बना रहा है भिन्न प्रतिभाओं के मौलिक संयोगों के कारण।

"कविता में व्यक्त करने के लिये नये मानवीय भावों की खोज एक गलत झक है और नवीनता की यह गलत खोज विपरीतता खोज लेती है। कवि का कार्य नये भावों को खोजना नहीं है वरन् साधारण भावों का उपयोग काव्य में ऐसी अनुभूतियों को प्रकट करने में करना है जो उन भावों में नहीं है।इस प्रकार उसके परिचित तथा पूर्णतया अपरिचित भाव भी उसके काम आजायेंगे।" [1]

अस्तु, कवि की मौलिकता है उसके नये 'राप्रोच' (Approach) में, न कि मौलिकता के लिये नये भाव-वस्तु की खोजबीन में।

अब भी दिलकश है तेरा हुस्न मगर क्या कहिये
और भी दुख हैं जमाने में मुहब्बत के सिवा
राहतें और भी हैं वस्ल की राहत के सिवा
मुझसे पहिले भी मुहब्बत मेरी महबूब न माँग

—फैज

फ़ैज़ की इन पंक्तियों में 'महबूब' के प्रति यह निवेदन कितना

---

१. टी० एस० इलियट् : सैकरेड उड' पृ० ५८

मार्मिक और युगानुरूप है। आज के भौतिक संघर्षों से त्रस्त और पस्त कवि का प्रणय के प्रति यह दृष्टिकोण कितना समीचीन और सत्य है। प्रणय की चिरन्तनता इन पंक्तियों में युग का स्वर बन ईग है और इसीलिये प्राचीन होने पर भी फैज की यह प्रणयानुभूति नतीनतम और निकटतम है।

आज के कवि के लिये भी यदि चाँद और सितारे ही काव्य का विषय बनें तो उसका यह अर्थ नहीं कि उसके काव्य पर रूढ़ि की छाया है। प्रकृति और पुरुष का आकर्षण तथा प्रेम और स्नेह आदि से मानव-हृदय का सम्बन्ध चिरन्तन है और यह सब कुछ प्राचीनतम होकर भी चिर नवीन है। कलाकार की प्रतिभा इसी सब कुछ को अपनाकर, अपनी शक्ति और समझ की कसौटी पर बार बार परख सकती है और उसके नये रूप प्रस्तुत कर सकती है।

आज का कवि, वह काव्य-सृजन क्यों कर रहा है—इसके प्रति उदासीन होकर, वह क्या कर रहा है—इसके प्रति अत्यधिक सचेष्ट है। उसकी व्यक्तिनिष्ठिता उसके स्वयं के अनुसार उसकी सबसे बड़ी विशेषता, किन्तु वास्तव में उसकी दुर्बलता है। अपने व्यक्तित्व की ही परिधि में तुष्ट कलाकार वास्तव में कुए के मेंढक के समान ही है जिसके लिए सारा संसार सिमट कर कुएँ में आगया हो।

'तार सप्तक' और 'दूसरा सप्तक' के कवियों का यथाशक्ति मनन-अध्ययन करने पर भी हमें वह संतोष न हो सका जो इन कवियों को अपने-अपने विषय में है। और इसका कारण है श्री शिवदानसिंह चौहान के शब्दों में—"प्राचीन काल के कलाकारों की तरह नई परि-स्थितियों से प्राप्त नई विषय-वस्तु को मूर्त, सक्रिय और सम्पूर्ण रूप से प्रतिबिम्वित करने के निमित्त प्रयोग करना छोड़कर केवल रूप-विधान और शैली को जानबूझकर अधिकाधिक निजी, जटिल और दुरूह बनाने की चेष्टा ही नई प्रयोगशील कविता की विशेषता है।"

सिद्धान्तरूप से अज्ञेय कहते हैं कि केवल प्रयोगशीलता ही किसी रचना को काव्य नहीं बनाती, किन्तु प्रस्तुत प्रयोगशीलता के उदाहरण इस कथन का विरोधाभास ही प्रस्तुत करते हैं।

प्रयोग एवं रूप-योजना

कवि का अनुभूत समाज तक कैसे पहुँचे, यह समस्या प्रत्येक युग के कवियों के लिए रही है। अपने अपने युग की माँगों और अपनी कला-सामर्थ्य में सामंजस्य स्थापित करना कवियों का सदा से उत्तर-दायित्व रहा है। 'आज भी' जो व्यक्ति का अनुभव है इसे अभीष्ट तक कैसे पहुँचाया जाए, यही पहली समस्या है जो प्रयोगशीलता को ललकारती है।

कवि का अनुभूत काव्य रूप में प्रस्फुटित होकर ही समष्टि तक पहुँच पाता है और इस अनुभूत को प्रगट करने के लिए ही आवश्य-कता होती है—

(१) भाषा के माध्यम, और

(२) शिल्प-योजना की।

भाषा, भावों एवं विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम होती है। उसकी सबसे बड़ी विशेषता इसी तथ्य में निहित होती है कि वह कितनी सफलता से व्यक्त भावों एवं विचारों को पाठक तक प्रेषित करती है। अपनी प्रेषणीयता की विशेषता को कायम रखते हुए यदि भाषा कर्ण-मधुर संगीतात्मक होकर अधिक प्रभावशाली हो तो वह और भी सफल मान ली जानी चाहिये।

गद्य और पद्य के भिन्न क्षेत्र होने के कारण गद्य और पद्य की भाषा में कुछ अन्तर (अधिक या कम) माना जाता रहा है। परन्तु आज इस अन्तर को भी कम से कम करने या मिटा देने की ओर अधिक प्रवृत्ति है। लोक-जीवन एवं लोक साहित्य की ओर बढ़ती हुई साहित्यिकों की चाह लोक-भाषा की ओर भी बढ़ रही है। काव्य को जन-जन तक पहुँचाने के उद्देश्य से कवि लोक-भाषा और लोक-मुहावरों के प्रयोगों की ओर अधिक झुक रहे हैं।

भाषा के प्राथमिक उद्देश्य 'प्रेषणीयता' की ओर ध्यान देने पर हमें आज के कवि के सम्मुख दो समस्यायें प्रतीत होती हैं—

१—अपने भावों को अधिक से अधिक बोधगम्य बनाकर जन-जन तक पहुँचाने की समस्या—व्यापक साधारणीकरण की समस्या,

२—अपनी युगानुकूल उलझी सम्वेदनाओं की अभिव्यक्ति और उनको पाठक तक पहुँचाने की समस्या।

प्रथम समस्या का सुलझाव प्रयोगवादी कवि ने बोलचाल की भाषा को अपनाना समझा है।

'जिस तरह हम बोलते हैं, उस तरह न लिख'—भवानीप्रसाद मिश्र

वास्तव में यदि बोलचाल की भाषा एवं मुहावरों को अपनाकर कवि जन जन तक पहुँच सके तो यह प्रयत्न निश्चय ही स्तुत्य होगा। पर इस प्रश्न पर भारत की वर्तमान परिस्थिति को ध्यान में रखकर विचार करना होगा। भारतवर्ष में प्रत्येक दस मील पर बोली—बोल-चाल की भाषा—बदलती है। आज का अवधी और व्रज-साहित्य जो बोलचाल की भाषा (लौकिक या उसका कुछ संशोधित रूप) ही है—हमारे अधिक काम का नहीं हो पा रहा है। आज की शिकायत है कि हिन्दी वाले हिन्दी के नाम पर कितनी भाषायें पढ़ाना चाहते हैं ? उत्तर में कहा जा सकता है कि हम खड़ी बोली के बोलचाल के रूप को ग्रहण करेंगे, अवधी-व्रज आदि को लेने का तो प्रश्न ही नहीं उठता ? ठीक है पर खड़ी बोली भी कहाँ की ? कोई ऐसा प्रदेश आप निर्धारित कर सकते जहाँ की बोलचाल की भाषा सम्पूर्ण हिन्दीजगत्

में आसानी से समझी जा सके। आज हिन्दी पर राष्ट्रभाषा का गम्भीर उत्तरदायित्व है, वह सम्पूर्ण देश की भाषा है। भाषाओं के विकास की दृष्टि से प्रत्येक क्षेत्र की बोलचाल की हिन्दी अपने स्वाभाविक रूप में विकसित होगी। अभी भी बम्बई, दिल्ली, बनारस तथा हैदराबाद में बोली जाने वाली हिन्दी में काफी भेद है। ज्यों ज्यों अन्य भाषा-भाषी हिन्दी को अपनाते जायेंगे यह भेद बढ़ेगा ही। अतः यदि कवि चाहते हैं कि उनकी रचनायें सम्पूर्ण देश की निधि हो सकें तो उन्हें लोक-भाषा को सँभालकर ही अपनाना होगा। हिन्दी भाषा के साहित्यक रूप को क्षेत्रीय प्रभावों से बचाना होगा। हमारा यह तात्पर्य नहीं कि इन क्षेत्रीय प्रभावों को बलपूर्वक रोका जाय, वरन् यही कि इनको सचेष्ट होकर न ग्रहण किया जाए।

दूसरी बात है अपनी उलझी सम्वेदनाओं को पाठक तक पहुँचाने की समस्या। प्रयोगवादी कवि समझते हैं कि 'शब्दों के प्रचलित अर्थ रूढ़ हो गये है उनमें साधारण अर्थ से बड़ा अर्थ भरने की आवश्यकता है।' अतः वे एक ओर तो प्रचलित शब्दों में अधिक व्यापक अर्थ भरने का प्रयत्न करते हुए उनका विचित्र और सर्वथा अनर्गल प्रयोग करते हैं और दूसरी ओर विज्ञान, दर्शन, मनोविज्ञान, बाजार, गाँव, गली-कूँचों तथा दूसरी भाषाओं से शब्द लेते हैं और उनका भी मनमाना प्रयोग करते हैं।

इसके अतिरिक्त 'भाषा को अपर्याप्त पाकर विराम-संकेतों, अङ्कों और सीधी-तिरछी लकीरों, छोटे-बड़े टाइप, सीधे-उलटे अक्षरों, लोगों और स्थानों के नामों, अधूरे वाक्यों का उपयोग करते हैं।'—अज्ञेय

पहली और दूसरी समस्याओं को सुलझाने के दृष्टिकोण में विरोधाभास है। एक ओर तो वे बोलचाल की भाषा की ओर जा रहे हैं, काव्य को जन-जन तक पहुँचाने के लिये; दूसरी ओर वे शब्दों के प्रचलित अर्थों के स्थान पर मनमाना अर्थ देना चाहते हैं। इस मनमाने अर्थ को पाठक तक पहुँचाने के लिये प्रत्येक कवि को अपनी शब्द-तालिका (vocabulary) देनी होगी या कदाचित् एक प्रयोग-

वादी कोष का सृजन करना होगा जिसका हर वर्ष संशोधन एवं परिवर्धन आवश्यक होगा। यही अन्य विज्ञानों और गली-कूँचों से नये शब्द लेने की बात है। एक ओर कवि लोक-भाषा की ओर जाता है दूसरी ओर अपनी रचनाओं को विज्ञान, मनोविज्ञान एवं दर्शन आदि की पारिभाषिक शब्दावली, तथा इधर-उधर के, कहीं के भी शब्दों से भरना चाहता है।

आड़ी-तिरछी लकीरों, विरामचिह्नों, छोटे-बड़े टाइपों के विषय में यह समझना आवश्यक है कि कवि तो इन्हें प्रयोग कर देंगे, पर पाठक उन्हें कितना समझ सकेंगे ? शुक्र है कि इस तरह के प्रयोग अभी तक अधिक नहीं हुए हैं।

यहाँ एक बात और विचारणीय है। क्या प्रयोगवादी कवियों के भाव एवं सम्वेदनाएँ वास्तव में इतनी उलझी हुई हैं कि उनको व्यक्त करने के लिये नये शब्दों को नये अर्थों में ग्रहण करने तथा विराम-संकेतों की आवश्यकता पड़ती है ? अथवा उन्होंने जानबूझकर कुछ नवीनता लाने के लिये उलझाने की प्रवृत्ति को अपनाया है। हमें तो ऐसा ही प्रतीत होता है कि प्रयोगवादी कवियों ने जो भाव अपनी कविताओं में व्यक्त किये हैं वे साधारण प्रचलित शब्दों में भी व्यक्त किये जा सकते थे और कदाचित् अधिक सबलता से, यदि कवि में सामर्थ्य होती और वह उस ओर प्रयत्नशील होता। यदि यह युग की परिस्थितिजन्य विशेषता मान ली जाए तो प्रश्न होता है कि इस युग के अन्य कवि, जो युग के सत्य, संघर्ष और ध्वनि को काव्य का विषय मानकर चल रहे हैं, किस प्रकार सफल होते हैं।

छन्दों का बन्धन तोड़कर काव्य को अधिकाधिक स्वाभाविक और सहज-सुलभ बनाने के लिये सिद्धान्त रूप में प्रयोगशील कवि उत्सुक रहता है। किन्तु स्वाभाविकता और अनगढ़पन का अन्तर इतना सूक्ष्म है कि प्रायः इनमें एक-दूसरे के पर्याय का भ्रम हो जाता है। सिद्धान्त रूप से ये कवि चाहे कुछ भी मान्यतायें बनालें, किन्तु कला की समझ या परख एक बात है और कला का सृजन दूसरी। यदि

ऐसा न हो तो श्रेष्ठ आलोचक श्रेष्ठ कवि भी निश्चय ही होता, किंतु हम देखते हैं कि ऐसा नहीं है। कला के पारखी होने का दावा रखने वाले कला का सृजन करने में असमर्थ भी हो सकते हैं। कला के गुण-दोषों की विवेचना तटस्थ रहकर की जा सकती है किन्तु सृजन के क्षण आत्मलीनता और आत्माभिव्यक्ति की अपेक्षा रखते हैं और यह सब तटस्थता की भाँति प्रत्येक के लिये सम्भव भी नहीं। यही कारण है कि प्रयास करने पर आलोचक बना जा सकता है किन्तु कवि नहीं, और आज का युग इसका ज्वलन्त प्रमाण है कि यदि प्रयास करके कवि बनाये जा सकते तो इस युग को सबसे अधिक कवि उत्पन्न करने का श्रेय प्राप्त हुआ होता।

भाषा और छन्द की रूढ़ि से हटकर वास्तव में प्रयोगशील कवि का उत्तरदायित्व कहीं अधिक बढ़ गया है। बोलचाल की भाषा, यदि काव्य की भाषा बन सके, तो अच्छा ही है। वह लोक-जीवन के लिये अधिक बोधगम्य और अधिक सहज-सुलभ होगी। केवल इतना ध्यान रखना होगा कि बोलचाल की भाषा काव्य की भाषा बने, काव्य की भाषा बोलचाल न बन जाये। भाषा का कवि द्वारा उचित संस्कार सदैव अपेक्षित है चाहे वह रूढ़ि की भाषा हो, चाहे बोलचाल की।

अनगढ़पन का अपना एक सौन्दर्य अवश्य है किन्तु कलाकार की अँगुलियों में उस अनगढ़पन के सौन्दर्य की रक्षा की उचित सामर्थ्य भी होनी चाहिये। प्रत्येक कला अपने सहजतम एवं स्वाभाविकतम रूप में सर्वश्रेष्ठ हो सकती है किन्तु अनगढ़ सहजता को कला का ना-समझ निर्वाह, भोंड़ा और प्रभावहीन बना देता है। यदि ऐसा न हो तो प्रत्येक व्यक्ति श्रेष्ठ कलाकार है क्योंकि अपनी सहज स्वाभाविक वृत्तियों और अनुभूतियों को सहज और स्वाभाविक ढंग से व्यक्त करना उसके लिये सम्भव है।

बच्चा रोया ऊँ ऊँ आँ आँ
ऊँ ऊँ आँ आँ...

यह कहकर कोई कवि बन सकता है। एक स्वाभाविकतम क्रिया

की इससे अधिक स्वाभाविक और अनगढ़ अभिव्यक्ति क्या हो सकती है, किन्तु नहीं; अनगढ़ की सौन्दर्य-रक्षा कदाचित् श्रेष्ठ कलाकार से ही सध सकती है।

नायिका के कपोलों की तुलना में धरती-आकाश की समग्र उपमाओं के जुटाने की अपेक्षा एक अछूते गुलाब की सुधि में विभोर हो जाना कहीं अधिक सहज और सुन्दर है। यह कोई भी सहृदय समझ सकता है कि उषा के रंग और मणियों की आभा की अपेक्षा केवल पुष्प की सुधि में विभोर हो जाना, मन-मस्तिष्क को धरती-आसमान में दौड़ाने की अपेक्षा भाव में डूबकर रह जाना कलात्मकता का अधिक सुघर परिचय है किन्तु वही भाव केवल "लाल-लाल गाल" कहकर प्रगट किया जाय तो क्या यह सस्ती अभिरुचि, स्वाभाविकतम होने पर भी, कलात्मक मानी जाएगी ?

एक ओर जहाँ अलङ्कार आदि का आग्रहपूर्ण प्रयोग एक कृत्रिम वातावरण की सृष्टि कर काव्य के स्वाभाविक सौन्दर्य को बोझिल बना देता है वहाँ नितान्त अनगढ़ता भी छिछलेपन को द्योतक ही होकर रह जाती है। यदि ऐसे प्रयासों को 'अनगढ़ता' न कहकर, कवि का अपने प्रयोगों के प्रति दम्भ—जो उसे प्रायः जानबूझ कर ऐसा करने को बाध्य करता है—कहा जाए तो भी अनुचित न होगा

प्रयोगवादी कवियों की दो कोटियाँ सी हैं। एक काव्य की विषय-वस्तु पर ही ध्यान केन्द्रित कर उसके कलात्मक प्रकटीकरण की उपेक्षा कर रहे हैं तो दूसरे शैली-शिल्पगत मोह में इतने ग्रस्त हो गये हैं कि अभिव्यक्ति के साधनों को ही कला की प्रामाणिकता मान बैठे हैं। दोनों ही असन्तुलित हैं--प्रथम कोटि जहाँ कलात्मक रूप की उपेक्षा कर निहित सत्य को उभरने ही नहीं देती, वहाँ शैली-शिल्प की साधना वैसी ही है जैसी आधुनिक रमणी की सौन्दर्य-प्रसाधनों के प्रति आसक्ति। संसार भर के प्रसाधन विकलांगी को सुरूपा नहीं बना सकते। काव्य में वस्तु, विषय और रूप-योजना, दोनों ही पक्षों का सन्तुलन आवश्यक होता है। एक के लिये दूसरे का बलिदान, या एक

पर दूसरे को प्रधानता देना उचित नहीं।

ये कवि छन्द-योजना का तिरस्कार करते हैं। मुक्त छन्द ही आज की नई कविता का सर्वप्रिय छन्द है। छन्द, काव्य के इतने आवश्यक तत्त्व भी नहीं कि केवल उन्हीं की रचना कर काव्य-सृजन कर लिया जा सके, किन्तु उनकी नितान्त उपेक्षा भी उचित नहीं मानी जा सकती।

छन्द की अवहेलना निराला ने की थी फिर भी उनके काव्य के सौन्दर्य को इससे क्षति नहीं पहुँची, कारण उन्होंने छन्दों की रूढ़ि को तोड़ा, तुकों की बन्दिशों को छोड़ा किन्तु अपने काव्य का वह शृंगार करने में कोई कसर न रक्खी जिससे किसी अभाव का अनुभव होने लग जाय। निराला की रचनायें मुक्तछन्द का श्रेष्ठ निर्वाह मानी जा सकती हैं।

निराला जी के अनुसार 'मुक्त छन्द का समर्थक उसका प्रवाह ही है वही उसे सिद्ध करता है;' और उन्होंने इस प्रवाह का परित्याग कहीं नहीं किया। परन्तु प्रयोगवादी कवियों ने इस प्रवाह को भी नहीं माना है, कविता गद्य का रूप धारण करती जा रही है। उसमें पूरी तरह गद्य का लहजा, उसका मुहावरा, बोलचाल का पूरा तौर-तरीका अपनाया जा रहा है जिससे उसमें न काव्य की आत्मा के दर्शन होते हैं और न गद्य का अर्थ-गौरव ही मिलता है।

स्वयं अज्ञेय जी ने सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की आलोचना करते हुए कहा है, "आज की कविता बोलचाल की अन्विति माँगती है, पर गद्य की जय नहीं माँगती। तुक-ताल का बन्धन उसने अनात्यन्तिक मान लिया है पर लय को वह उक्ति का अभिन्न अंग मानती है। बाह्य अनुशासन को हेय नहीं तो गौण मान लेने पर आन्तरिक अनुशासन को वह अधिक महत्व देती है"[१]

पर देखिये, गद्य से होड़ करती हुई कविता जिसे कविता कहकर प्रस्तुत किया गया है :—

"तुम तीर से अलग-अलग दिशाओं में अपना मुँह छिपाकर चले

१. नई कविता, अंक २.

गए, वहाँ तुम्हारी फौजें तुम्हारा इन्तजार कर रही थीं। महज इसलिये कि मुझे विश्वास है कि तुम्हारी आँखों के सामने पिकासो का शान्ति कबूतर ही था; जिसे अगली बार युद्ध-क्षेत्रों में मार्च करते हुए विशाल टैंकों पर तुम सुन्दरता के साथ लगाने की बात सोच रहेथे।"[१]

"मैं आज भी जिन्दा हूँ उस हस्ताक्षर की भाँति जो मजाक में यों ही किसी वट वृक्ष के नीचे पिकनिक, तफरीह में लिख दिया गया था। एक तेज धार वाले फौलाद की नोक अब भी मेरी छाती में गड़ी है और उस वट-वृक्ष का घायल सीना, उस दाग की रक्षा हर मौसम में करता है।"[२]

कुछ अन्य नमूने भी देखिये—

"तुम्हें जाने
अगर इस बार बतला दो
हमारी मुट्ठी में है छिपी क्या चोज ?
ऊँ हूँ ! क्यों बताएँ हम,
छिपाने में पुरुष होते नहीं कम,
किसी से भी।
न बतलाओ नहीं मालूम है तो
यों किसी को दोष देने से
मिलेगा क्या ?"[३]

अथवा

"यह आम रास्ता नहीं,
इधर से मत जाओ
इस गलियारे से जाना
वर्जित है।[४]

---

१. नई कविता : २
२. नई कविता : १
३. नई कविता : १
४. साहित्यकार : सितम्बर अक्तूबर अंक : १६५५.

गद्य की अपेक्षा पद्य का बाह्यरूप महत्व रखता है। कविता कदाचित् अल्पतम शब्दों का सफलतम प्रयोग कही जा सकती है।[1]

चुने हुए शब्दों से अनुभूतियों का शृङ्गार कर देना, उनके प्रभाव को सुसंगठित (Concentrated) रूप में व्यक्त करने का प्रयास है, जो उसके प्रभाव को बिखरने नहीं देता उसकी तीक्ष्णता को कुण्ठित नहीं होने देता। उदाहरण के लिये एक ही भाव यदि गद्य और उचित पद्य दोनों में प्रकट किया जाए तो पद्य निश्चय ही अधिक प्रभावशाली बन पड़ेगा। काव्य में संगीत ध्वनि, और नाद वे आवश्यक उपकरण रहे हैं जिन्होंने बल और सामर्थ्य प्रदान किया है। जितनी छन्दों की गुलामी अनुचित है उतना ही अनुचित है उनका यह आवेशपूर्ण बहिष्कार, जिसने आज के काव्य को शिखण्डी की स्थिति में पहुँचा दिया है। यदि इसे गद्य कहा जाए तो इसके रचयिता नाराज हो सकते हैं और पद्य कहा जाए तो किस आधार पर ?

कहीं पढ़ा था कि 'न्यूडिस्ट' (Nudist) क्लब के सदस्य पति-पत्नी क्लब में थे और क्लब के नियमानुसार उनके अङ्गों पर कोई वस्त्र-खण्ड न था। उनका बच्चा बाहर ही रह गया था और छिद्र पाकर अन्दर झाँक रहा था। किसी ने उससे पूछा कि इनमें तुम्हारी माता कौन सी है ? बच्चे ने उत्तर दिया, "जरा ठहरो, वे कपड़े पहन लें तो पहचान सकूँगा।"

आज अनेक ऐसी कृतियाँ हैं जो यदि कविता कहकर ही हमारे सामने न लाई जायें तो हमारी स्थिति उसी अबोध बालक की सी हो जाए जो बिना वस्त्रों के अपने माँ-बाप में भेद न बता सकता था।

हिन्दी कविता के इस रूप पर अंग्रेजी कविता का प्रभाव है। अंग्रेजी साहित्य के अलोचक भी ऐसी प्रवृत्ति को बहुत आदर से नहीं देखते। इलियट के अनुसार 'फ्रीवर्स' के नाम पर बहुतसा भोंड़ा गद्य लिखा गया है।[2]

---

१. One merit of poetry, few person well deny, it says more and in fewer words than prose.—Valtaire

२. No one has better cause to know than. I That

अंग्रेजी में भी अब भी बहुत कुछ कूड़ा-ककट लिखा जा रहा है, जिसकी प्रशंसा आलोचक कर रहे हैं।[१]

हिन्दी के प्रयोगवादी अलोचक भी गद्य के इन भोंड़े स्वरूपों को प्रोत्साहित कर रहे हैं:—

"जिस प्रकार आज के जीवन में आवश्यक बन्धनों एवं विधि-निषेधों के प्रति अरुचि दिखाई देती है उसी प्रकार छंद-विधान में भी स्वतन्त्रता का आग्रह अधिकाधिक व्यक्त हो रहा है। कथ्य की शक्ति-मत्ता और महत्ता के साथ-साथ कथन की यथासम्भव अकृत्रिमता इस युग की कविता की एक विशेषता कही जा सकती है। इस कृत्रि-मता से मुक्ति पाने की वृत्ति ने ही कदाचित् नई कविता को कुछ अंशों में गद्य के समीप ला दिया है।"

—डा० जगदीश गुप्त

डा० जगदीश गुप्त ने आगे लिखा है "कविता गद्य और पद्य दोनों से ऊपर है।" यह कवि की इच्छा पर है कि कविता की रचना वह गद्य में करे अथवा पद्य में करे। पद्य कविता की सबसे पुरानी और सबसे बड़ी रूढ़ि है जिसे निरालाजी ने झकझोर दिया था। नई कविता इसे तोड़कर आगे बढ़ रही है। इसीलिये इतना हाहाकार मच रहा है।

ये प्रयोगकर्ता अपनी रचनाओं में (Rhython) लय होने का दावा करते हैं। मन्मथनाथ गुप्त के शब्दों में "अच्छा पढ़ने या गानेवाला किसी भी कविता में Rhython पैदा कर सकता है और अब तो डा० जगदीश गुप्त जैसे कतिपय विद्वान् इस लय से भी बढ़कर एक आन्त-रिक लय (जिसे वे अर्थ की लय कहते हैं) की विशेषता को प्रधानता

---

a great deal of bad pras has been written under the name of fer verse.

—T. S. Eliot (the music and poetry)

१. that a grest deal of rubbish is being written at time and is encouragep recklessly by reviewers.

—Readers digest, Nov. 1955.

देने लगे हैं। अर्थ की लय से उनका क्या तात्पर्य है यह उन्होंने स्पष्ट नहीं किया, परन्तु नई कविता के छन्द एवं लय की अवहेलना की प्रशंसा करते हुए कहते हैं, आज जब कविता इस अर्थ की लय को पकड़कर चलती है तो छन्द का स्थूल रूप पीछे छूट जाता है। जो उसके अर्थतत्त्व पर ध्यान नहीं देते उन्हें वह गद्य में ही लिखी प्रतीत होती है।"[1]

तब फिर क्या डा० जगदीश गुप्त गद्य की परिभाषा 'निरर्थक साहित्य' करते हैं ? नई कविता अंक २ में ही एक लेखक ने इस कविता को "गद्य कविता" नाम देने का सुझाव रखा है। गद्य-कविता में वस्तु कविता की होगी अर्थात् वह भावावेगमय होगी परन्तु उसका विधान गद्य का होगा......इस प्रकार कविता की आत्मा तथा गद्य का शरीर लेकर "गद्य कविता" विकसित होगी।

काव्य के लिये छन्द-योजना की कोई न कोई मर्यादा, उतनी ही आवश्यक प्रतीत होती है जितनी रूपवती से रूपवती रमणी के लिये उचित परिधान की। मुक्त-छंद कविता 'छन्द-मुक्त' न होने पाये, कम से कम इतना नियम तो माना ही जाना चाहिए। कविता के रूप में प्रस्तुत की जाने वाली सामग्री को काव्य की संज्ञा देने से पहले गद्य से स्पष्टतया अलग कर लेना होगा, अन्यथा इन प्रयोगों से काव्य की आत्मा कुण्ठित होती रहेगी और शरीर क्षत-विक्षत।

फिर भी शैली, शिल्प और भाषा-गत प्रयोग साधन ही है, साध्य तो आ कें कवि का भी काव्य-सृजन ही है। समय और युग की मान्यताओं के साथ काव्य की परिभाषायें भी बदलती रही हैं। काव्य केवल रस नहीं है काव्य अलंकार नहीं है, काव्य केवल कल्पना और अनुभूति भी नहीं है किन्तु जो इन सब में से कुछ भी नहीं, क्या वह काव्य है ? नई कविता के समर्थक उसे बौद्धिकता की पृष्ठभूमि पर प्रतिष्ठित कर उसके मूल्यांकन के नये प्रतिमान प्रस्तुत करना चाहते हैं।

१. नई कविता २.

श्री जगदीश गुप्त के शब्दों में "नई कविता आकर्षण को ही नहीं, विकर्षण को भी टटोलती है; व्यंग करना, चोट करना, ध्यान में डूबे हुए को जैसे रोक देना, झकझोर देना उसका स्वभाव है।"

ठीक है 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' ही आधुनिक काव्य की कसौटी बने यह तो दुराग्रह ही होगा।

नई कविता रससिक्त न करे, व्यंग ही करे, चोट ही दे अथवा केवल स्पर्श ही कर ले; किन्तु उसकी इन प्रवृत्तियों में भी कम से कम इतना वेग तो हो कि वह जिस भी प्रभाव की सृष्टि करना चाहती है उसे गहराई से करे।

इस कविता को समझने और अपनाने के लिए युगों से प्रतिष्ठित और मर्यादित समस्त काव्यगत सिद्धान्तों को बदलने की बात वैसी ही है जैसी अद्भुत-रूप सन्तान को जन्म देनेवाली माँ का यह कहना कि मेरे शिशुओं को सुन्दर मानने के लिए आपको अपनी सौन्दर्य-विषयक परिभाषा को बदलना होगा।

काव्य कदाचित् कवि का वह भावोच्छ्‌वास है जो उसके मर्म को छूकर प्रगट होता है और हमारे मर्म को छू लेता है। काव्य और कुछ न हो किन्तु मर्मस्पर्शी हो, कम से कम यह तो मानना ही होगा। वाल्मीकि की करुणा, कालिदास का शृङ्गार, तुलसी की निष्ठा और प्रसाद की कामायनी का दर्शन इन सब में और चाहे जो भी भेद हों किन्तु मर्मस्पर्शी ये सभी हैं। अनुभूति और अभिव्यक्ति की विशेषतायें इन कवियों में भिन्न रहीं हैं किन्तु ये सभी अपने-अपने क्षेत्र में हमारे हृदयों में झंकार अवश्य उत्पन्न कर सके।

प्रयोगवाद नवीनतम प्रयोगों के लिये स्वतन्त्र है ही, किन्तु इस स्वतन्त्रता का उपयोग काव्य के क्षेत्र को ही स्थानान्तरित करने के स्थान पर, उस क्षेत्र की मर्यादाओं को, किन्हीं मर्यादाओं के अनुसार ही परिवर्तित-परिवर्धित करने करने का प्रयास करना समीचीन है। कला के मूलभूत सिद्धान्तों में आमूल परिवर्तन की योजना रखने की

अपेक्षा ऐसे रचनात्मक प्रयोग किये जाएँ जो वास्तव में व्यक्ति की नहीं युग की पुकार प्रतिध्वनित करें; जहाँ कवि अपनी संवेदनशीलता को समष्टि के लिये सच्चे अर्थों में व्यापक बना सके।

काव्य काव्य रहे, यह पहली शर्त है फिर वह चाहे भक्तियुग की अजस्र रसधार हो, चाहे हमारे प्रयोगवादी कवियों का समस्या-निरूपण।

प्रयोग एवं अस्पष्टता

प्रयोगवादी काव्य में अस्पष्टता एवं दुरूहता की कुहेलिका पर्याप्त मात्रा में मिलती है। पाठकों के लिये यह अस्पष्टता एक गम्भीर प्रश्न बन जाती है। अस्पष्टता के अतिरिक्त एक कवि की विभिन्न रचनाओं में विपुल विरोध मिलता है और कभी कभी तो एक ही रचना में विरोधाभास प्रतीत होता है; कारण बताया जाता है, आज के संकुल युग के आकुल कवि का जीवन के हर क्षेत्र में विरोध, अस्थिरता एवं अन्तर्द्वन्द्व से घिरा होना। कवि अपनी विषम और उलझी अनुभूतियों एवं सम्वेदनाओं को ज्यों का त्यों चित्रित करना चाहता है। स्वयं अज्ञेयजी ने इस अस्पष्टता को 'विवशता' एवं 'आपद्धर्म' के रूप में स्वीकार किया है।[1]

परन्तु कुछ सहृदयों के अनुसार अस्पष्टता काव्य की एक विशेषता मानी जानी चाहिए।

"प्रसाद गुण वैसे पाठकों की दृष्टि में काव्य का सबसे बड़ा गुण

१. "जीवन की जटिलता को अभिव्यक्त करने वाले कवि की भाषा, गूढ़ अलौकिक अथवा दीक्षा द्वारा गम्भीर हो जाना अनिवार्य है, किन्तु यह उसकी शक्ति नहीं, विवशता है; धर्म नहीं, आपद्धर्म है।"

है। वैसे पाठकों से मुझे कुछ कहना नहीं। काव्य में एक सीमा तक अस्पष्टता आवश्यक है, अपेक्षित है, ऐसी मेरी धारणा है। 'रियलिज्म' यथार्थवादिता का सम्बन्ध 'रियलिजेशन' (Realisation) अनुभूति से है न कि वस्तु की यथार्थ स्थिति से। दिन में सूर्य अपनी पूर्ण शक्ति के साथ चमकता है। छाया और प्रकाश में केवल मात्रा का अन्तर भर रहता है किन्तु चन्द्रज्योत्स्ना में ऐसा नहीं। अन्धकार और प्रकाश का वास्तविक भेद चाँदनी रात में ही मालूम पड़ता है। कुञ्जों की सघन हरीतिमा में ज्योत्स्ना की झिलमिल रहस्यपूर्ण है, और करती है औत्सुक्य की सृष्टि। यह अस्फुटता मोहकता की जननी है जिसके कारण मानव-मानस कौतूहल-निवारणार्थ रहस्यमयी सृष्टि भेदना चाहता है। कुछ इसी प्रकार की बात काव्य के लिए कही जा सकती है। अस्पष्टता से कवि पाठक की कल्पना उद्वेलित करता है और उसकी कल्पना जागरित होकर कवि की आत्मा के साथ एकात्मता की प्राप्ति का प्रयास करता है। किन्तु, अस्पष्टता का यह अर्थ नहीं कि कवि पहेलियाँ बुझाना या जान-बूझकर पाठकों पर आतंक जमाने के लिए वितंडावाद की सृष्टि करे। अस्फुटता का समादर काव्यक्षेत्र में उपेक्षणीय दृष्टि से नहीं देखा जाना चाहिए।"[1]

योरोप में भी काव्य और शैली की अस्पष्टता एवं दुरूहता वाद-विवाद का विषय रही है। कुछ विद्वान् उसे एक निश्चित दोष मानते हैं और उसका कारण लेखक की असमर्थता एवं उसके भावों की उलझन मानते हैं।[2]

---

१. रामखेलावन पाण्डेय : काव्य-कल्पना, पृ० १२४

२. Obscurity and affectation are the two great faults of style. Obscurity of expression generally spring from confusion of ideas,......

Macanlay. (Dictionary of thought p. 618)

(ख) the obscurity of a writer is generally in proportion to his incapacity. —Quintilian (Same P. 618)

दूसरी ओर कुछ कवि-आलोचक काव्य में अस्पष्टता एवं दुरूहता का निश्चित मूल्य समझते हैं ।[१]

इस दुरूहता का कारण यह है कि कवि एक भाव से दूसरे भाव या एक चित्र से दूसरे चित्र के बीच की लड़ियों को छोड़ते चलते हैं ।[२] परन्तु वहाँ की नई कविता भी अब स्पष्ट होती जा रही है क्योंकि अब उसकी विषय-वस्तु कम गूढ़ है ।[3]

वैसे तो किसी भी गम्भीर और वजनदार साहित्य को समझने और अपनाने के लिये पाठक को अपनी कल्पना और विचार शक्ति को तय्यार करना ही पड़ता है और यह भी निश्चित है कि पाठक स्वयं जितना कल्पनाशील और विद्वान् होगा उतनी ही मात्रा में वह कृतियों का आनन्द ले सकेगा ।

दसवीं कक्षा के विद्यार्थी से कहीं अधिक एम० ए० का विद्यार्थी तुलसी की कृतियों का रसास्वादन करता है । किसी कवि की एक ही कृति किन्हीं को तन्मय कर देती है किन्हीं पर प्रभाव डालती है और किन्हीं को छूकर ही रह जाती है, ऐसा क्यों ? कदाचित् इसीलिये कि पाठक के मानसिक जगत् के अपने गुण-दोष भी एक महत्व रखते हैं ।

(ग) to me an obscurity in a reason for suspecting a fallacy. —Charles Kingslay (Same P. 617)

१. There is therefore a positive value of obscurity which must be affirmed in opposition to those who expect poetry to be as plain as a pick-wickor some less obscure object— Ibid.

२- Much of the obscurity of modern poetry is to be seffered to its cutting to borrow a term from cinema. Many modern poets Leave out those links between idea and idea or between image and image... —Ibid P.P. 109

३. On the whole modern poetry is becoming more lucid and that because subject is less isoteric. —Ibid p.P. 113

मिठाई मीठी होने पर भी सबको समान मात्रा में स्वादिष्ट नहीं लगती।

काव्य में अस्पष्टता के स्वागत के लिये पाठक को शायद किन्हीं विशेष तय्यारियों की आवश्यकता हो। किन्तु आज अस्फुटता (Obscurity), कुछ प्रगट और कुछ अप्रगट (Half revealing and half concealing), के नाम पर ऐसी पहेलियाँ भी बुझवाई जा रही हैं जिनका एकमात्र महत्व कदाचित् उनकी अस्पष्टता ही होता है।

श्री शमशेर बहादुर सिंह की एक कविता "शरीर-स्वप्न" इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

शरीर-स्वप्न

मकई से लाल गेंहुए तलुए
मालिश से चिकने हैं।
सूखी-भूरी झाड़ियों में व्यस्त
चलती-फिरतो पिंडलियाँ... ।
(मोटी डालें, जाँघों से न अड़ें।)
सूरज को आईना जैसे नदियाँ हैं—
इन मर्दाना रानों की चमक
'उन' को खूब पसन्द !.........
वह वन शिव का स्थान।
शान्त ज्योति में लय है ध्यान।
नभ-गंगा की शक्ति
सदा बरसती वहाँ।
वज्र गिरि, कमर कठोर
सीधा चढ़ता, ऊर्ध्व दिशा की ओर।
शेष:
नीला सूनापन।

हमने इस कविता को बार-बार पढ़ा। ईमानदारी से समझने की कोशिश की, कुछ साहित्यिक मित्रों से सहायता भी ली। शब्दों के

१. दूसरा सप्तक, पृ०

अर्थ तो अवश्य समझ में आ गये किन्तु वे अर्थ कोई स्पष्ट चित्र नहीं प्रस्तुत कर सके। अनुमान तो कई लगाये गये और हो सकता है कि उनमें से कोई सत्य भी हो (यह तो कवि महाशय से पूछने पर ही निश्चित हो सकता है) किन्तु अभी तो हमारे पल्ले एक पहेली को सुलझाने का कष्ट छोड़कर और कुछ नहीं पड़ा। वैसे तो कवि ने संकेत भी काफी दिये हैं पर वे संकेत पहेली को ही पूरा कर सके हैं उसके सुलझाव की ओर इंगित नहीं सके।

ऐसी ही श्री भवानीप्रसाद मिश्र की कविता 'कमल के फूल' है। कविता द्विअर्थक सी प्रतीत होती है किन्तु उसकी काया किस छाया की ओर इंगित करती है यह स्पष्ट नहीं हो पाता।

ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं हैं जिनके लिये झुँझलाकर आज का हिन्दी पाठक व्यंग कर बैठता है :—

भला वह भी कोई कविता है जिसको सुन लिया, समझे
नहीं हैं, आर्ट कुछ उसमें जिसे हर बेपढ़ा समझे।
वही कविता कलामय है जिसे आलिम तो क्या समझे,
अगर सौ बार सर मारे, तो मुश्किल से खुदा समझे।[1]

अंग्रेजी के एक प्रसिद्ध कवि राबर्ट ब्राउनिंग (Robert Browning) का एक कथन है "जब मैंने यह कविता लिखी थी तब इसे दो व्यक्ति समझते थे एक मैं और दूसरा खुदा, किन्तु अब केवल खुदा समझता है।" हमें भय है कि कहीं हमारे नये कवियों को भी इसी कथन का आश्रय न लेना पड़े।

प्रसाद गुण वास्तव में काव्य का एक बड़ा गुण है। प्रसाद गुण से हमारा तात्पर्य यह नहीं कि पाठक को अपनी मानसिक शक्तियों को उद्वेलित करने का अवसर ही न दिया जाए और अब कुछ उसके सामने ऐसे सुलझे और सरल ढंग से रख दिया जाए जैसे गणित का हल किया हुआ कोई प्रश्न। विश्व की महान् कृतियों में प्रसाद गुण इतनी मात्रा में अवश्य मिलता है कि वे हमें उन्हें समझ पाने और

१. ब्रजमोहन वर्मा : संस्मरण (सरिता : दिसम्बर १९५६)

आस्वादन करने का यथेष्ट अवसर दे देती हैं। अर्थ की गहनता, अनुभूति की सरलता और रूप-योजना का सौन्दर्य सभी पाठकों से एक प्रयास की अपेक्षा रखते हैं किन्तु ऐसी अस्पष्टतायें ऐसे सोपान हैं, जिन पर चढ़ कर हम कुछ ऊँचे उठते हैं, कुछ सीखते हैं, समृद्ध होते हैं। यदि विचार करके देखा तो ऐसी सार्थक अस्पष्टता सबल कलाकार द्वारा ही सम्भव है।

कहा जाता है कि आज का कवि स्वयं इतनी उलझनों में ग्रस्त है कि वह बरबस उलझनों के ही चित्रों की सृष्टि करने के लिये बाध्य है। राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक और सबसे अधिक कवि की स्वयं की व्यक्तिगत समस्यायें अनगिन हैं। उदाहरण के लिये भारतभूषण की निम्न कविता पढ़िये—

धार है करार में
तीखी और तेज
मेरी छाती पर बरसों टिकी रही है
जिसकी नोक
और मैं जीता चला आया हूँ
प्रतिपल संत्रस्त भयभीत निःसहाय

इसकी अस्पष्टता के सम्बन्ध में स्वयं कवि का कथन है-"छोटी सी कविता है, और छंद, संगीत, अलंकार के कोमल वरदानों से शून्य, बड़ी रूखी सी कविता है। अब आप ही बताइए, क्या आपको आश्चर्य न होगा, अगर मैं कहूँ कि मेरी यह कविता निराश प्रेम की कविता है, क्योंकि मन की बात कटार के प्रतीक के माध्यम से कही गई है। और और बात को कहते हुए भी मन ने अनजाने में उसको छिपाने की इतनी कोशिश की है कि कविता के अन्य साधारण गुणों की ओर ध्यान नहीं दिया जा सका।" कारण बताते हुए कवि कहता है— "कवि अपनी भावनाओं का कारबार करता है, और मुझे लगता है कि अनेक कारणों से आजकल मेरे जैसे कवि की भावनायें इतनी उलझ जाती हैं कि उनकी पूर्ण अभिव्यक्ति संभव नहीं हो पाती।

इतना ही नहीं, कभी कभी तो जान-बूझकर अपने भावों को ऐसे ढंग से और ऐसे प्रतीकों के माध्यम से रखना पड़ता है कि उसका मतलब समझने के लिये काफी मेहनत और समय लगाना पड़ेगा।"[1] ठीक है कवि उन उलझनों के भी चित्र खींचे, हमें उलझनों से अवगत कराये; किन्तु उलझन को उलझन बनाकर नहीं वरन् उलझनों को प्रश्न या समस्या के रूप में स्पष्टतया चित्रित करके। अन्यथा वह कवि का भावोच्छ्वास तो हो जाएगा, पर बेचारे पाठक के पल्ले कुछ न पड़ेगा।

मगज को बाग में जाने न दो,
कि नाहक खून परवानों का होगा।

साधारण पाठक मधुमक्खियों के बाग में जाने और परवानों के खून होने में सम्बन्ध नहीं देख पाता। मधुमक्खियाँ मोम उत्पन्न करती हैं मोम से शमा बनती है और शमा पर परवाने न्योछावर होते हैं। मधुमक्खियाँ और परवानों के जलने के इस सम्बन्ध की ओर कवि का इशारा है, जिसे मस्तिष्क पर जोर देकर ही समझा जा सकता है। ऐसी पंक्तियाँ भी चमत्कृत ही अधिक करती हैं।

अस्पष्ट और उलझी रचनाओं का प्रयास इस युग की ही विशेषता नहीं है। अभिव्यक्ति के नानारूपी माध्यमों के रूप में कबीर की उलट-बाँसियाँ सूर के दृष्टिकूट पद और गोरखनाथ के गोरखधन्धे भी प्रसिद्ध हो चुके हैं किन्तु आज की अस्पष्ट रचनायें इन सबसे इस सम्बन्ध में अवश्य विकसित हैं कि उन प्राचीन गोरखधन्धों का मानसिक व्यायाम के पश्चात् एक निश्चित अर्थ लग जाता है जब कि आज वह भी संभव नहीं हो पाता।

डा० नगेन्द्र के अनुसार प्रयोगवादी रचनाएँ 'अनिवार्य रूप से ही नहीं, सिद्धान्त रूप से भी दुरूह हैं। + + + क्योंकि इनके आधारभूत सिद्धान्त ही सदोष हैं और मनोविज्ञान तथा काव्य शास्त्र दोनों की कसौटियों पर ही खोटे उतरते हैं।"[2] उन्होंने दुरूहता के

१—प्रतीक, दिसम्बर १९५१ पृ० ३७-३८.

२—विचार और विवेचन, पृ० १४७

कुछ कारण प्रमाण देते हुए बताये हैं जो इस प्रकार हैं—

१—भावतत्व और काव्यानुभूति के बीच रागात्मक के बजाय बुद्धिगत सम्बन्ध,

२—साधारणीकरण का त्याग,

३—उपचेतन मन के अनुभव-खंडों के यथावत् चित्रण का आग्रह,

४—काव्य के उपकरणों एवं भाषा का एकान्त वैयक्तिक और अनर्गल प्रयोग,

५—इन सबका मूलभूत कारण—नूतनता का सर्वग्राही मोह, जो सदा, परिचित को छोड़ अपरिचित की खोज में रहता है।[1]

इन सब कारणों पर हमने यथास्थान विचार किया है।

१—विचार और विवेचन, पृ० १४७

अन्त में

इन प्रयोगवादी रचनाओं का स्वागत हिन्दी क्षेत्र ने दो प्रकार से किया है। एक ओर तो श्री नन्ददुलारे वाजपेयी से सहृदय साहित्यिक प्रयोगवाद को एक व्यर्थ की सी वस्तु समझकर उसकी अवहेलना करना चाहते हैं तो दूसरी ओर श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा जैसे विद्वान् आलोचक प्रयोग के पक्ष में इतनी सुन्दरता से अपनी आग्रहपूर्ण दलीलें पेश कर सकते हैं कि हम चाहें उन रचनाओं से प्रभावित न हों, किन्तु उन रचनाओं की इस 'वकालत' से अवश्य प्रभावित होंगे।

'नई कविता के प्रतिमान' पुस्तक में श्री वर्मा ने नई कविता के पहलुओं पर जी भर कर विचार किया है। कविताओं के उद्धरण देकर वर्मा जी ने अपने मत प्रस्तुत किये हैं, किन्तु वास्तविकता यह है कि श्री वर्मा ने प्रयोगवाद की जिन महत्ताओं का वर्णन किया है वे उनकी कसौटी पर काल्पनिक रूप से अवश्य खरी उतरती हैं, वास्तविकता में नहीं भी। श्री शमशेर बहादुर की एक कविता 'मैं सुहाग दूं' के सम्बन्ध में वर्मा जी कहते हैं, "शमशेर की उपर्युक्त कविता में व्यक्तिगत तत्व का चरम उत्कर्ष है। इसकी कलात्मकता में यह निहित है कि कवि का गतिशील (Dynamic) अहम् और उसका सौंदर्य-

बोध सर्वथा नये आयाम प्रस्तुत करता है। यही नहीं, वह सौन्दर्य को भोगने की, उस साहचर्य को बौद्धिक स्तर पर ग्रहण करने की क्षमता रखता है।" कविता है—"मैं सुहाग दूँ।"

(गीत)

धरो शिर
हृदय पर
वक्ष-वह्नि से—तुम्हें
मैं सुहाग दूँ !
चिर सुहाग दूँ !
प्रेम अग्नि से—तुम्हें
में सुहाग दूँ।
+ + +
विकल मुकुल तुम,
प्राणमयि
यौवनमयि
चिर वसन्त स्वप्नमयि
मैं सुहाग दूँ !
विरह-आग से तुम्हें
मैं सुहाग दूँ।

———

बार-बार गौर करने पर भी वर्मा जी द्वारा वर्णित विशेषतायें वास्तविक कविता में नहीं मिलती। कविता 'निराला' स्टाइल में लिखा गया एक प्रणय-निवेदन है जो तनिक चुस्त ढंग से प्रस्तुत किया गया है। 'साहचर्य को बौद्धिक स्तर पर ग्रहण करने, आदि का तो उसमें संकेत भी नहीं है। और वर्मा जी द्वारा प्रस्तुत अनेक कविताओं की आलोचना में हम उनकी आलोचना का लोहा मान सकते हैं पर जिन कृतियों की वे आलोचना हैं उनका फिर भी नहीं।

काव्य तभी सफल है जब उसकी विषय-वस्तु और रूप-योजना

का सन्तुलन इस रूप में हो कि वह व्यष्टि से समष्टि तक पहुँचकर अधिकाधिक व्यापक हो सके। केवल महत्वपूर्ण समस्याओं अथवा सिद्धान्तों को स्वीकार लेने से ही कविता सम्पन्न नहीं हो जाती। दर्शन, मनोविज्ञान अथवा राजनीति के तथ्य जब काव्य के कथ्य बनते हैं तो अपेक्षा इस बात की होती है कि वे कवि की संवेदनाओं द्वारा आत्मसात् किये जाकर कितने काव्यात्मक हो सके हैं। काव्यात्मकता से हमारा तात्पर्य काव्य के रूढ़िगत निर्वाह से कदापि नहीं है। काव्यात्मकता से तात्पर्य केवल भावपक्ष अथवा विचारपक्ष का कलापक्ष से वह सामंजस्य है जो कविता को लोक-प्राणों का स्पन्दन बना सके। यदि केवल विषय-वस्तु ही सब कुछ होती तो वाल्मीकि की रामायण और राधेश्याम की रामायण में यह आकाश-पाताल का अन्तर नहीं होता। और यदि कला-योजना ही काव्य की कसौटी होती तो आचार्य केशव का स्थान सर्वोपरि होता तथा इन प्रयोगवादी कवियों में से भी अनेक ऐसे हैं जो उत्कृष्टतम कृतियों के सर्जक माने जा सकते।

आज का कवि अपने और अपने चारों ओर के वातावरण के प्रति अत्यधिक जागरूक है। यह जागरूकता उसकी एक महत्वपूर्ण विशेषता है। किन्तु केवल यह जागरूकता ही कवि के लिये पर्याप्त नहीं है। इस जागरूकता को निरन्तर परखने और सँवारने के साथ ही यह भी अपेक्षित है कि वह कला-साधना का बल लेकर प्रकट हो।

प्रयोगवादी रचनाओं में ऐसे उदाहरण बहुतायत से मिलेंगे जो निर्विवाद तथ्य अथवा सत्य होते हुए भी अधूरे हैं, असम्पूर्ण हैं। श्री शमशेर की 'बात बोलेगी' कविता सत्य की निर्विवाद महानता का बल लिये होने पर भी कविता के रूप में निर्बल ही है। कारण है स्वाभाविकता के नाम पर कवि की वह अहम्-ग्रस्त प्रयासहीनता जो काव्य की साधना को भी कवि के लिये अनावश्यक मान बैठती है।

ये प्रयोगवादी रचनाएँ आज के बदले युग के स्पन्दनों से परिपूर्ण हैं और इस कारण उनका हार्दिक स्वागत भी है। किन्तु ये स्पन्दन समष्टि के प्राणों के संगीत बन सकें, इसके लिये आवश्यक होगा कि

हमारे ये कवि यह न भूलें कि कला के पारखी होने से भी अधिक कवि के लिये कला की साधना आवश्यक है। आज के ये 'राहों के अन्वेषी' ही कल की मंजिल के अधिकारी हैं अतः जहाँ हम उनकी 'राह के अन्वेषण' की प्रवृत्ति का मुक्त हृदय से स्वागत करते हैं वहाँ यह निवेदन भी आग्रहपूर्वक करते हैं कि राहों का यह अन्वेषण किसी मंजिल के साधन रूप में हो अन्यथा नवीनतम राहों का यह आकर्षण दिग्भ्रम ही सिद्ध होगा।

आज के कवि की उलझनें बड़ी हैं और उसका उत्तरदायित्व भी बड़ा। वह अपनी सामाजिक चेतना के प्रति यथेष्ट उद्‌बुद्ध भी है। आवश्यकता केवल इतनी ही है कि वे नवीनता का सृजन करें, किन्तु नवीनता के 'सर्वग्रासी मोह' से अपनी रक्षा करके साथ ही व्यक्ति-निष्ठता और वस्तु-निष्ठता दोनों पक्षों का पग-पग पर कला-साधना से सन्तुलन करना न भूलें। कवि अपने युग की माँगें पहचानता है, यही पर्याप्त नहीं है, जब तक कि वह उन माँगों की पूर्ति में अपना अपेक्षित योग नहीं देता।

सप्तकों के इन कवियों में सभी कुछ कम या अधिक मात्रा में प्रतिभाशील कवि हैं, अच्छे विचारक हैं। कतिपय में उत्कृष्ट रूप से पल्लवित-पुष्पित होने के अंकुर भी निहित हैं। कम से कम अपने वक्तव्यों में ये सभी कवि कर्म एवं समाज के प्रति जागरूक हैं और प्रयत्नों में भी सचेष्ट हैं किंतु वे अपने अहम् में ग्रसित हैं और अपनी मान्यताओं के प्रति हठपूर्वक आग्रही हैं। विकसित मस्तिष्क तथा उच्च बौद्धिक धरातल होने के कारण वे अपनी कमजोरियों के लिये भी अकाट्य तर्क ढूँढ़ सकते हैं और दूसरों की बातों को हवा में उड़ा सकते हैं। उदाहरण के लिये श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा ने अपनी पुस्तक में परम्परा को 'अन्धानुसरण' और प्रगति को तथाकथित 'साम्यवाद की नकल' कहकर उड़ा दिया है और प्रयोगवाद को सर्वथा मौलिक देन कह इतना ऊँचा उठाया है कि हमें उससे वर्माजी के 'दिवास्वप्न' का भ्रम हो जाता है। काव्य की विषय-वस्तु तथा रूपयोजना में पूर्ण

स्वच्छन्दता का 'फतवा' इन कवियों एवं आलोचकों से प्राप्त कर अनेक ऐसे, जिनमें न कवि होने की प्रतिभा है और न कुछ विचार-शक्ति ही है, काव्य के क्षेत्र में कूद पड़े हैं। कदाचित् यह मान लिया गया है कि प्रयोगवाद का आश्रय लेकर जो कुछ भी कहा जायगा वही महान् साहित्य बन जाएगा। प्रयोगवादी कवियों से हमारी यही प्रार्थना है कि साहित्य के क्षेत्र में इस 'भेड़ियाधसान' को रोकें। वे प्रयोग करें अवश्य, नवीन, नवीनतर एवं नवीनतम प्रयोग करें, पर वास्तव में केवल प्रयोग करने के लिये नहीं, वरन् किसी अधिक ऊँचे प्राप्य के लिये।

